अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

जुलाई २०१७

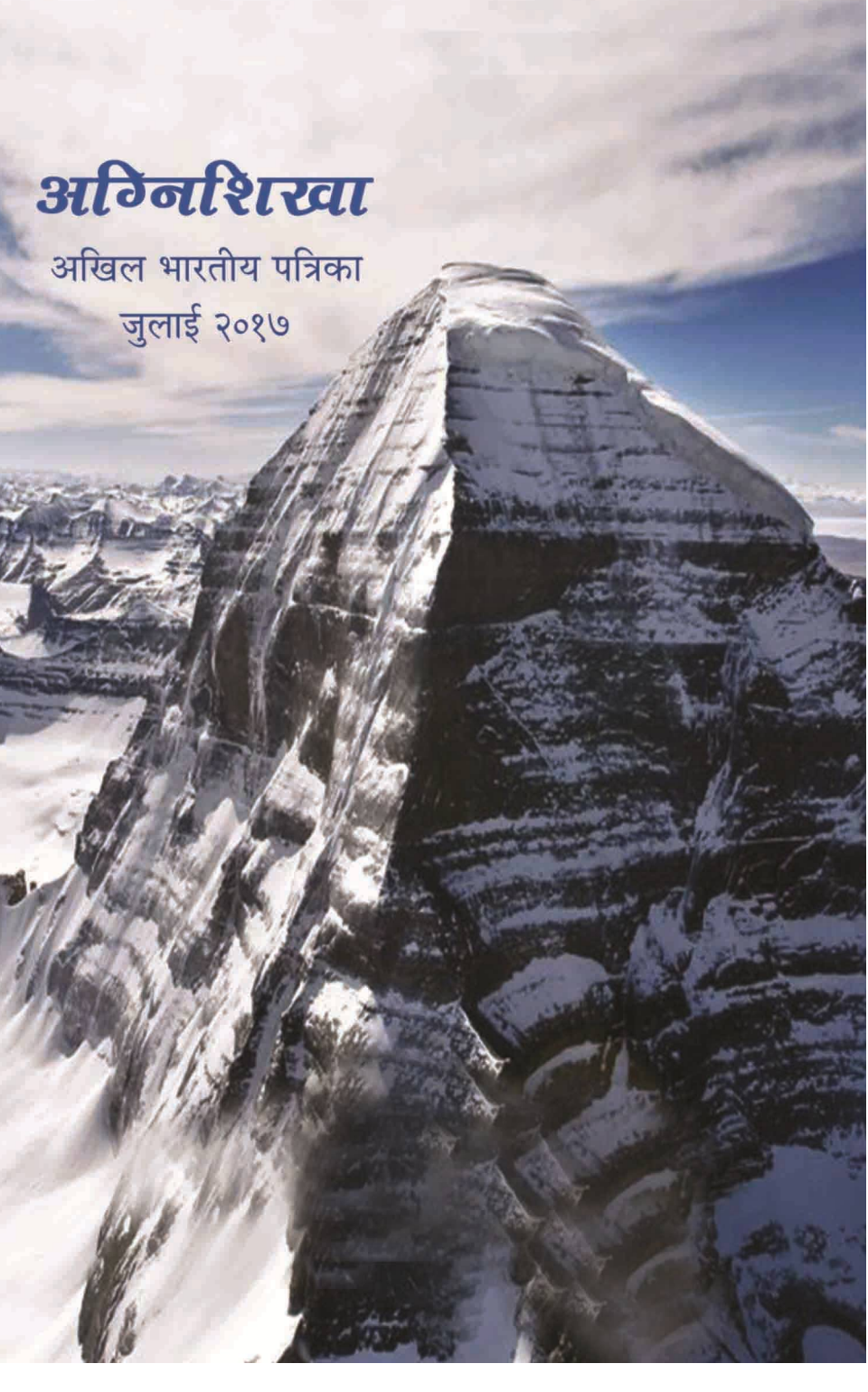

विषय-सूची

(रसो वै सः)

प्रभु के साथ हँसो/सम्पादकीय		३
श्रीअरविन्द का हास्य		५
अमृत का विनोद		१२
'कारावास की कहानी' के रोचक अंश	श्रीअरविन्द	१४
माधुर्य और मुस्कान	'श्रीमातृवाणी' से	३८
शिष्य का सुझाव और गुरु का जवाब		४२

'पुरोधा'

दैनन्दिनी		४५
श्रीमाँ के साथ पत्र-व्यवहार	'श्रीमातृवाणी' से	४८
पतंग	कृष्ण कुमार	५१
दो मनोरञ्जक कथाएँ	वन्दना	५३
जागृति	'वीणा' से साभार	५६

अग्निशिखा का वार्षिक शुल्क :
एक वर्ष—१८०रु.; तीन वर्ष—५२०रु.; पाँच वर्ष—८६०रु.।
पत्रिका हर महीने की ४ तारीख़ को प्रेषित की जाती है।
श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका
Website : www.aurosociety.org

सम्पादिका : वन्दना
प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी—६०५००२
मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी

प्रभु के साथ हँसो

जब कभी वातावरण गम्भीर हो उठे तो तुम कह सकते हो कि कहीं कोई चीज़ ठीक नहीं है, कोई हानिकारक प्रभाव, कोई पुरानी आदत अन्दर आने का प्रयास कर रही है जिसे कभी स्वीकारना नहीं चाहिये। यह सब पश्चात्ताप, यह सब सन्ताप, अयोग्यता की भावना, अपराध की भावना और फिर एक पग और आगे, पाप की भावना—ओह! यह सब... मुझे लगता है कि ये सब एक दूसरे युग, अन्धकार के युग की चीज़ें हैं।

अब बात समझ में आ गयी; अब हम यह जानने की कोशिश करेंगे कि प्रभु के साथ कैसे हँसा जाता है। —श्रीमाँ

सम्पादकीय : जो जीवन पर मुस्कुरा सकता है वह विनोदप्रिय है। मानवजाति को प्रभु की यह देन उसे अपने 'कठिन क्रमविकासात्मक पथ' को पार करने में बड़ी सहायता पहुँचाती है। सच्चा हास्य वह भागवत गुण है जो हमें उत्साहित-आनन्दित रखता है और भले जीवन-यात्रा दुष्कर हो, इसी के द्वारा हम जगत् में ख़ुशी फैला सकते हैं। श्रीअरविन्द में यह गुण उदात्त और भागवत कोटि का था, उधर श्रीमाँ की भी सूक्ष्म विनोदप्रियता साधक को घण्टों हँसा सकती थी।

'अग्निशिखा' के इस अंक में हम मुख्य रूप से श्रीअरविन्द द्वारा बंगला में लिखित 'कारावास की कहानी' के बहुत ही रोचक अंशों का हिन्दी-अनुवाद दे रहे हैं। एक वर्ष के निर्जन कारावास की सज़ा को उन्होंने कितनी विनोदप्रियता में ढाला है इसका यह जीवन्त उदाहरण है।

'श्रीअरविन्द का हास्य', दिलीप कुमार रॉय को लिखा पत्र और 'अमृत का विनोद' भी कम रोचक नहीं हैं।

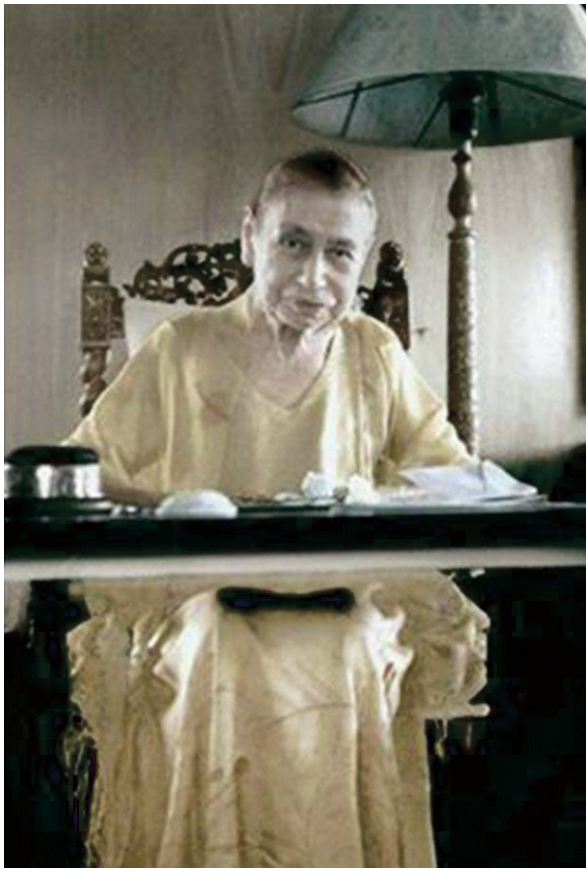

श्रीअरविन्द ने कितनी ही बार इस बात को दोहराया है कि परमात्मा हास्यप्रिय हैं और हम ही उन्हें प्रशान्त और सर्वदा गम्भीर रहने वाला बना देना चाहते हैं, और उन्हें यहाँ आकर किसी अविश्वासी का आलिंगन करने में मज़ा आता होगा। जिस व्यक्ति ने शायद पिछले दिन यह कहा था : "भगवान् का अस्तित्व नहीं है, मैं उन पर विश्वास नहीं करता। यह तो मूर्खता और अज्ञान है।"... उसी को वे अपनी भुजाओं में ले लेते हैं, उसे अपनी छाती से चिपका लेते हैं—और एकदम उसके मुँह पर हँसते हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. ४२

श्रीअरविन्द का हास्य

श्रीअरविन्द के हास्यरस के पत्रों की एक अलग ही छटा है। इनमें से अधिकतर नीरद के नाम लिखे गये हैं। इन पत्रों की भी अलग पुस्तकें हैं। लीजिये, हास्य के कुछ पत्रों का नमूना देखिये, पहले विनोदप्रियता के ही बारे में :

" 'विनोदप्रियता'? वह तो जीवन का नमक है। संसार वैसे ही काफ़ी असन्तुलित है, परन्तु इसके बिना तो वह अपना सन्तुलन पूरी तरह खो बैठता और कब का भस्म हो चुका होता।"

अगले पत्र में मानव-मात्र को एक प्रमाण-पत्र मिल रहा है :

"लोग बहुत ज़्यादा मूर्ख हैं, लेकिन मेरा ख़याल है कि यह उनके बस की बात नहीं है। मैं मानवता को जितना अधिक देखता हूँ उतना यह भाव प्रबल होता जाता है। मूर्खता की वे खाइयाँ हैं जिनमें मनुष्य...।"

लेकिन इसमें चिन्ता की बात नहीं, वे कहते हैं : "मेरी राय है कि ईश्वर महान् हैं और महान् है विश्व का रहस्य और चीज़ें वैसी नहीं हैं जैसी दीखती हैं।"

आश्रम के एक साधक थे दिलीप कुमार रॉय। उनके मकान में एक छोटा-सा दरवाज़ा था जिससे उनका सिर टकरा गया। उन्होंने यह बात श्रीअरविन्द को लिख भेजी। उनके उत्तर की बानगी देखिये :

"हमारे इंजीनियर चन्दूलाल ने तुम्हारे यहाँ जो दरवाज़ा लगाया उसके साथ तुम्हारा सिर टकरा गया। निःसन्देह दुःख की बात है। लेकिन याद रखो, चन्दूलाल का द्वार के साथ द्वार के रूप में व्यवहार बिलकुल त्रुटिहीन और निर्दोष था। वह केवल इतनी-सी बात भूल गया कि उसमें से भिन्न-भिन्न आकार के लोगों को गुज़रना होगा। हमारे लिलीपुट-वासी इंजीनियर ने शायद चीज़ों को अपने सिर के हिसाब से नापा था और वह यह भूल गया कि आश्रम में उससे ज़्यादा ऊँचे सिर और उससे ज़्यादा चौड़े कन्धे भी हैं—रही बात दिव्य आनन्द की, तो सिर पर, पैर पर, कहीं भी चोट लगे तो उसे पीड़ा के भौतिक आनन्द, पीड़ा और आनन्द या शुद्ध रूप से भौतिक

आनन्द के रूप में लिया जा सकता है। मैंने प्रायः, अनैच्छिक रूप से यह परीक्षण किया है और उसमें बड़ी अच्छी तरह से पास हुआ हूँ और इसका आरम्भ बहुत पहले अलीपुर जेल में ही हो गया था जहाँ जेल की कोठरी में मुझे भयंकर दीखने वाली लाल योद्धा चींटियों ने काटा था। मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि सुख और दुःख हमारी इन्द्रियों की प्रथाएँ-मात्र हैं।"

अब ज़रा गम्भीरतापूर्ण विनोद देखिये :

"जब हमारे मानस-विश्लेषण-शास्त्री अपनी टिमटिमाती मशाल की सहायता से आध्यात्मिक अनुभूतियों की जाँच-पड़ताल करने लगते हैं तो मैं उन्हें ज़रा भी गम्भीरता से नहीं ले सकता। लेकिन शायद उन्हें गम्भीरता से लेना ज़रूरी है क्योंकि अधकचरा ज्ञान एक शक्तिशाली चीज़ है और सच्चे सत्य के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा बन सकता है। इस नूतन मानस-शास्त्र के बारे में मुझे ऐसा लगता है मानों बच्चे संक्षिप्त-सी किताब और थोड़ा-बहुत ककहरा सीख कर अपनी-अपनी अवचेतना के क ख ग और रहस्यमय भूमिगत पराहम् (महान् अहं) को एक साथ रख कर यह मान बैठें कि उनकी अस्पष्ट-सी बाल-पोथी (क से कौआ, ऊ से ऊँट) ही वास्तविक ज्ञान का हार्द है। वे नीचे से ऊपर को देखते हैं और ऊपर के प्रकाश की व्याख्या नीचे के धुँधलेपन से करते हैं। लेकिन इन चीज़ों का मूल ऊपर है 'उपरि बुध्न एषाम्'। चीज़ों का असली आधार अतिचेतन है, अवचेतना नहीं। पंकज का अर्थ उस पंक के रहस्यों की खोज करने से नहीं मिलेगा जिसमें से वह यहाँ जन्म लेता है। उसका रहस्य मिल सकता है कमल के उस स्वर्गिक आद्य रूप में जो सदा-सर्वदा दिव्य ज्योति में खिला रहता है।"

नीरद के साथ जो विनोद-भरा पत्र-व्यवहार हुआ है वह तो अनुवादक का सिर तोड़ने के लिए काफ़ी है। वहाँ शब्दों के खेल हैं, भाषा की तरंगें हैं। श्लेष की, अनुप्रासों की और पैने व्यंग्यों की भरमार है जिन्हें और किसी भाषा में नहीं उतारा जा सकता, फिर भी हम इधर-उधर कुछ पत्र लेने का दुःसाहस करेंगे। नीरद पूछते हैं : "ऐसा मालूम होता है कि आपने बड़ी उदारता के साथ 'क' को चाय और मक्खन प्रदान किया है।"

श्रीअरविन्द उत्तर में कहते हैं :

"मक्खन नहीं, चाय और बक-बक। मैंने ये चीज़ें उसे रिआयत के रूप

में दी हैं अन्यथा वह अपने-आपको इन चीज़ों से वञ्चित करके निराशा के सागर में जा डूबता—निश्चय ही ब्रह्म तक पहुँचने के लिए नहीं। वह ऐसा कुछ करना चाहता था जिसके लिए उसकी प्रकृति तैयार न थी। अगर वह तीव्र आध्यात्मिक अनुभूतियाँ पा ले तभी वह चाय और बक-बक छोड़ कर भी दुर्दशा में लौटे बिना रह सकता है। पर इतनी छोटी-सी बात को समझना इतना कठिन है, मेरा ख़याल था कि मन्द-से-मन्द बुद्धि के लिए भी यह बात बिलकुल स्पष्ट होगी।

चूँकि मैंने उसे बक-बक करने की अनुमति दे दी और उसके आडम्बरपूर्ण त्यागी और वैरागी बनने के दावे पर रोक लगायी तो क्या इसका यह अर्थ होगा कि चाय और बक-बक योग का अंश हैं। 'ग' को उसके भौतिक विकास के लिए मक्खन और अण्डे दिये जाते हैं तो इसका यह अर्थ है कि मक्खन और अण्डे ब्रह्मप्राप्ति के आधार हैं! किसी के पेट में दर्द हो तो क्या इसका यह अर्थ होगा कि पेट का दर्द, औषधालय, डॉक्टर और एलोपैथी की दवाइयाँ सभी लोगों को आध्यात्मिक बनाने का श्रेष्ठ मार्ग हैं। 'ग' न बनो, मेरा मतलब—बहुत तार्किक न बनो।"

२३.१.१९३६ को नीरद लिखते हैं: महोदय मुझे आश्चर्य है कि अब भी समय के अभाव की शिकायत है।

श्रीअरविन्द—सचमुच? अगर तुम मेरी जगह होते तो तुम्हें आश्चर्य न होता।

नीरद—अब तो आपकी चिट्ठी-पत्री कम हो गयी है। मैं आशा करता हूँ कि अब आप 'सावित्री' पर काम कर रहे होंगे।

श्रीअरविन्द—चिट्ठी-पत्री कम कहाँ हुई है? मैं ६ से १२ तक चिट्ठी-पत्री में लगा रहता हूँ। (इसमें से एक घण्टा निकाल दो।) फिर स्नान और भोजन के बाद रात के ढाई से सवेरे सात बजे तक चिट्ठी-पत्री चलती रहती है। तीसरे पहर का काम इसके अतिरिक्त है और फिर भी बहुत कुछ छूट जाता है, और तुम 'सावित्री' लिखने की बात सोच रहे हो! स्पष्ट है कि तुम चमत्कारों पर विश्वास करते हो।

और अब अन्तिम पत्र:

नीरद—आज अगर मैं आपके साथ लड़ पड़ूँ तो मुझे क्षमा कीजिये। आपने इशारा किया है कि मैं भीरु हूँ।

श्रीअरविन्द—सभी मनुष्यों में एक भीरु छिपा रहता है, ठीक वही भाग जो हमेशा पहले सुरक्षा के लिए आग्रह करता है—निश्चय ही यह वीरता की वृत्ति नहीं है। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि अगर सम्भव हो तो स्वयं अपने लिए मैं भी सुरक्षा चाहूँगा—शायद इसीलिए मैंने हमेशा ख़तरनाक रास्ते अपनाये हैं और मैं ख़तरनाक जीवन जीता आया हूँ और साथ ही बहुतेरे नीरदों को अपने साथ घसीटता रहा हूँ।

नीरद—आप योग और सामान्य मानव क्रिया-कलाप की बात एक ही साँस में कर जाते हैं, यह देख कर मैं स्तब्ध रह जाता हूँ।

क्या श्रीकृष्ण ने यह नहीं कहा :

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।।

"हज़ारों में से कोई विरला ही सिद्धि-लाभ के लिए कोशिश करता है और कोशिश करने वाले सिद्धों में कोई विरला ही मुझे पाता है।"

श्रीअरविन्द—सरकारी नौकरी पाने के लिए कितने लोग कोशिश करते हैं और कितने पाते हैं? सब जगह वही नियम है।

नीरद—मैं बताऊँ आपको कि एक जन्मजात योगी को योग के बारे में क्या लगता है। उसका कहना है कि बहुत बार उसकी भाग जाने की इच्छा हुई है, चाहे किसी भी नरक में ही क्यों न जाना हो। तब फिर हम वियोगियों की तो बात ही क्या है?

श्रीअरविन्द—मुझे पता नहीं कि जन्मजात और अजात योगी भी होते हैं। सभी में, चाहे वे जात हों या अजात, अपनी-अपनी मानसिक और प्राणिक कठिनाइयाँ होती हैं।

नीरद—और इस पर तुर्रा यह कि आप कभी पहल नहीं करते और लोगों से यह नहीं कहते कि यह करो या वह मत करो। आपका सिद्धान्त है कि हर एक को लम्बी रस्सी दे दी जाये जिससे वह चाहे तो अपने को फाँसी दे ले।

श्रीअरविन्द—क्या मुझे सबको रस्सी में बाँध कर, या उनकी नाक में नकेल डाल कर ले चलना चाहिये? इस तरीक़े से अतिमानव नहीं बनाये

जा सकते; उनके लिए लम्बी रस्सी ज़रूरी है।

नीरद—मैं योग करने के लिए बड़ी सच्चाई के साथ आता हूँ और अन्त में अवसाद के हाथों एक यन्त्र बन कर रह जाता हूँ। क्या यह दयनीय और दुःखद स्थिति नहीं है? कृपया, ज़रा इस ओर भी तो नज़र डालिये।

श्रीअरविन्द—हे भगवान्! तुम सचमुच कवि हो।

नीरद—क्षमा करें, आपकी रेलवे के बारे में तीखी टिप्पणी ज़रा विषय से बाहर चली गयी है। मैं साहस करके योग करने आया था।

श्रीअरविन्द—तो अब भी यह कह कर कि यहाँ सुरक्षा नहीं है, रोने-धोने की जगह साहस करते चलो।

नीरद—रेल वगैरह में यात्रा सुरक्षित होती है। विरोधी शक्तियाँ इतनी दुष्ट नहीं होतीं, लेकिन भगीरथ प्रयास के बाद भी योग-मार्ग रञ्चमात्र सरल नहीं बनता।

श्रीअरविन्द—तुम्हें 'मातैं' *(एक फ़्रेंच अख़बार)* पढ़ना चाहिये, प्रायः ही भयंकर टक्करें और दुर्घटनाएँ होती रहती हैं। मैं स्वीकार करता हूँ कि भारतीय रेलें धीमी हैं, इसलिए बिलकुल तो नहीं पर अपेक्षया ज़्यादा सुरक्षित हैं।[१]

ख़ैर, और हवाई जहाज़ों के बारे में क्या कहोगे?

नीरद—फिर भी यह बड़ी समस्या है। युधिष्ठिर की तरह आपके स्वर्ग तक कितने लोग जीते-जागते पहुँच सकेंगे?

श्रीअरविन्द—और उसका कुत्ता, तुम कुत्ते को भूल गये?

नीरद—मुझे भय है कि स्त्रियों को छोड़ कर हममें से अधिकतर की स्थिति पाण्डवों की-सी होगी।

श्रीअरविन्द—यहाँ लिंगभेद क्या कर रहा है? बहुत ज़्यादा डॉक्टर न बनो।

नीरद—क्योंकि शरीर-शास्त्र का कहना है कि उनकी शारीरिक रचना आत्म-त्याग के लिए ज़्यादा अनुकूल है और योग में यह ज़रूरी है।

श्रीअरविन्द—क्या यही एक चीज़ है जिसके लिए उनका शारीरिक यन्त्र काम करता है? मेरा ख़याल है कि नर और नारी दोनों में ही अन्य बहुतेरी चीज़ें हैं जो योग के लिए वाञ्छनीय नहीं।

[१] यह लगभग ८० वर्ष पहले की बात है। आज यहाँ भी दुर्घटनाएँ कम नहीं होतीं।

यहाँ शायद इस बात की ओर ध्यान खींचना असंगत न होगा कि माताजी भी बहुत ज़्यादा विनोदप्रिय थीं, परन्तु साधारणतः उनका विनोद पैना नहीं होता था, वह धीमे से चुटकी लेता था, ज़रा-सा गुदगुदा देता था, लेकिन उसे लिपिबद्ध करना असम्भव है। स्वयं उन्होंने कहा था कि उनका हास्य-विनोद शब्दों में नहीं, उनके पीछे होता है। वे एक-आध शब्द बोल कर, ज़रा-सा संकेत करके, ज़रा-सा मुँह बना कर आदमी को घण्टों हँसा सकती थीं। कुछ लोग उन्हें हमेशा हास्यमय पाते थे और कुछ हमेशा गम्भीर। शायद, *जाकी रही भावना जैसी*।

यहाँ पर दो-एक ज़रा पैने मज़ाक सुन लीजिये :

अमरीका से एक सज्जन आये। स्वभावतः वह पैसे की भाषा ही समझते थे। उन दिनों आश्रम की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी न थी। उन्होंने देखा कि आश्रम को जितना पैसा चाहिये उसे तो वे चुटकियों में जमा कर सकते हैं। उन्होंने माताजी से कहलवाया : "आप मुझे आश्रम के बारे में बोलने की छूट दे दें तो मैं आपके यहाँ पैसे का ढेर लगा दूँगा।"

यह सुन कर माताजी को मज़ा आया। उन्होंने कहा, "हाँ, मैं छूट दे दूँ तो वह अमरीका के हर कोने पर बड़े-बड़े पोस्टर लगा देगा, 'आ रहा है, आ रहा है, अतिमानव आ रहा है। उसे देखने के लिए स्थान आरक्षित करवा लीजिये।' या नयी मानवजाति के बारे में ऐसे ही विज्ञापन छपवा लोगों को उसमें भरती होने का निमन्त्रण देगा। नहीं, नहीं, मुझे स्वीकार नहीं।"

एक और घटना लीजिये। उस वर्ष बहुत ज़ोर की वर्षा हुई। बहुत-से मकान ढह गये। माताजी और श्रीअरविन्द के कमरों की छतें छलनी बनी हुई थीं। एक नयी बात यह थी कि दीवारों में से पानी रिस-रिस कर अन्दर आ रहा था। किसी ने माताजी से पूछा कि यह कैसे हो रहा है।

उन्होंने बड़ी गम्भीर मुख-मुद्रा के साथ कहा कि यह विशेष तकनीक से बनायी गयी दीवारें हैं, इन्हें अवशोषक दीवारें कहते हैं। ये बाहर जाकर पानी चूस कर अन्दर लाती हैं।

सुनने वाला भौचक्का रह गया। माताजी के चेहरे की गम्भीरता देख कर उसने सोचा कि शायद यह कोई विशेष तकनीक होगी। वह मौक़ा मिलते ही दीवार बनाने वाले इंजीनियर चन्दूलाल के पास पहुँचा और उनसे अवशोषक दीवारों का रहस्य जानना चाहा। वे भी एकदम स्तब्ध रह

गये और पूरी बात सुनने के बाद बोले, "ओहो, अब समझा। माताजी मेरे ऊपर आवाज़ कस रही थीं।"

उनके सूक्ष्म मज़ाकों को लिपिबद्ध करना तो एकदम असम्भव है।

'पुरोधा', फ़रवरी १९९८ —श्रीअरविन्द के साथ बातचीत
(स्मृति के आधार पर)

प्रभु के साथ हँसो

यह आनन्द, यह अद्‌भुत हास्य ही है जो समस्त अन्धकार, समस्त दुःख-दर्द और समस्त सन्ताप को विलीन कर देता है! इस आन्तर सूर्य को पाने के लिए तथा उसकी किरणों में स्नान करने के लिए स्वयं अपने अन्दर पर्याप्त गहराई तक प्रवेश करना काफ़ी है और तब सब कुछ सुसमञ्जस, ज्योतिर्मय, सूर्यमय हास्य का झरना बन जाता है, जिसमें कहीं भी कोई छाया या दुःख नहीं रह सकता।...

और यह सूर्य, यह दिव्य हास्य का सूर्य प्रत्येक वस्तु के एकदम केन्द्र में विद्यमान है, प्रत्येक वस्तु का सत्य है—आवश्यकता बस यही है कि हम उसे देखना, अनुभव करना और जीवन में उतारना सीखें।

और इसके लिए हमें उन लोगों से दूर रहना चाहिये जो जीवन को अत्यन्त गम्भीर रूप में लेते हैं, वे ऐसे लोग हैं जिनसे मनुष्य ऊब उठता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. १८३-८४

व्यक्ति को हमेशा हँसना चाहिये, हमेशा। 'प्रभु' हँसते हैं और हँसते रहते हैं। 'उनका' हास्य इतना अच्छा है, इतना अच्छा है, प्रेम से इतना परिपूर्ण है। यह ऐसा हास्य है जो तुम्हें असाधारण मधुरता के साथ अपनी भुजाओं में भर लेता है!

मनुष्यों ने उसे भी विकृत कर दिया है—उन्होंने हर चीज़ विकृत कर दी है। *(माताजी हँसती हैं)*।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ११, पृ. ५८

अमृत का विनोद

माताजी शाम के समय क्रीड़ांगण में फ़्रेंच में अनुवाद करने की कक्षाएँ लिया करती थीं। एक दिन हमारे सतत व्यस्त अमृत देर से कक्षा में पहुँचे। माताजी ने उनसे पूछा, भगवान् और मानव के बीच की दूरी क्या है और साथ ही सहास यह भी जोड़ दिया, "जब तक तुम इस प्रश्न का उत्तर न दे सकोगे, कक्षा में प्रवेश न कर पाओगे।" हमारे हाज़िरजवाब अमृत उत्तर देने की बजाय लम्बे डग भरते हुए माताजी की ओर बढ़ने लगे। हम सबके सब भौचक्के रह गये कि माताजी की आज्ञा का उल्लंघन कैसे कर रहे हैं! तीन लम्बे डग भर कर वे माताजी के पास जा पहुँचे और बड़ी शालीनता से बोले—"बस, तीन क़दम का फ़ासला है माँ। आप भगवान् हैं और मैं मानव।" माताजी उनके इस उत्तर से प्रसन्न हो उठीं और हम सब तो कई दिनों तक उनके इस सटीक उत्तर की भूरि-भूरि प्रशंसा करते रहे।

माताजी के कमरे के दरवाज़े के पास ही एक बड़ी आलमारी रखी रहती थी जो ज़रा बाहर को निकली हुई थी, परिणाम-स्वरूप बहुत बार लोग उससे टकरा कर चोट खा जाते थे। जब माताजी को उसे वहाँ से हटाने का सुझाव दिया गया तो उन्होंने यह कह कर मना कर दिया कि "यह लोगों को सचेतन बनाती है।" अतः, वह आलमारी वहाँ प्रहरी की भाँति खड़ी रही। एक बार हमारे व्यस्त अमृत चिट्ठियों, प्रार्थनाओं, और न जाने कौन-कौन से सामान से लदी-फँदी एक ट्रे अपने हाथ में लिये माताजी के कमरे में आ रहे थे, आलमारी से सिर टकराया और माथे पर एक छोटा गुम्बद उभर आया। जब वे अपनी चीज़ें माताजी के सामने निकाल रहे थे तो उनके माथे के उभार को देख कर माताजी ने तुरन्त उसका कारण पूछा। अमृत ने तपाक् से मुस्कुराते हुए दर्द की परवाह किये बिना जवाब दिया—"माँ, मैं अपने-आपको अधिक सचेतन बना रहा हूँ।"

अमृत उन लोगों में से थे जिनका माताजी के पहली बार पॉण्डिचेरी आने के साथ-साथ, यानी, १९१४ से ही परिचय हो गया था और अपनी मृत्यु के समय, यानी ३१.१.१९६९ तक गुरु-शिष्य का वह सम्बन्ध बना

रहा। ऐसा लगता है कि उनके सम्बन्ध में माताजी ने एक बार कहा था कि ५० वर्ष की उम्र में ही अमृत की मृत्यु बदी थी, लेकिन उन्होंने उसे २० वर्ष की और अवधि दे दी। अमृत दु:ख नहीं भोगना चाहते थे और उन्होंने दु:ख भोगा भी नहीं। वे अपनी बीमारी में भी शय्याग्रस्त न हुए। यहाँ तक कि अन्तिम दिन भी वे काफ़ी प्रसन्न थे, थके हुए ज़रूर थे और अपनी आराम-कुर्सी पर शिथिल-से बैठे थे। दोपहर के समय 'क' उनके कमरे में आया, उन्हें ज़रा मुरझाया-सा देख पूछ बैठा, "अमृत दा, कैसी तबीयत है आज आपकी?" वे अपनी उसी ज़िन्दादिली से बोले, "भाई, बाक़ी सब तो ठीक है बस मेरी 'स्वीट-हार्ट' ही मुझे तंग कर रही है।" उनका इशारा अपने हृदय की ओर था क्योंकि वे हृद्‌रोग से पीड़ित थे। उसी रोज़, ३१ जनवरी की रात को वे हाथ-मुँह धोकर अपने कमरे में आकर लेटे और ८ बज कर ४० मिनट पर उन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया।

नलिनी और अमृत प्रणव दा के विभाग में शारीरिक परीक्षा के लिए गये थे, वहाँ हुए उनके वार्तालाप का एक अंश—

नलिनी—डॉ. व्यास का कहना है कि मेरा स्वास्थ्य हर तरह से अधिक अच्छा हो गया है, यहाँ तक कि मेरे जैसे कमज़ोर की छाती भी अब चौड़ी हो रही है।

अमृत—अरे वाह! अद्‌भुत, अद्‌भुत!

नलिनी—लेकिन तुम जानते हो, एक चीज़ मैं काफ़ी समय से बढ़ा नहीं पा रहा हूँ।

अमृत—कौन-सी चीज़?

नलिनी—अपनी लम्बाई। उसमें काफ़ी समय से कोई फ़र्क नहीं आ रहा।

अमृत—लम्बाई बढ़ाने का मैं एक अच्छा उपाय जानता हूँ।

नलिनी—मेरी लम्बाई बढ़ाने का उपाय?

अमृत—हाँ। चुपके से, बड़े हौले-हौले अपने पंजों पर खड़े हो जाओ, लेकिन याद रखना, बड़ी सफ़ाई से यह काम करना, फिर देखना तुम लम्बे हो जाओगे!!

नलिनी—निरुत्तर!!!

—'पुरोधा', सितम्बर २००१ से

'कारावास की कहानी' के रोचक अंश

मेरे निर्जन कारावास का भूगोल

मेरा निर्जन कारागृह था नौ फ़ीट लम्बा और पाँच-छः फ़ीट चौड़ा, इसमें कोई खिड़की नहीं, सामने था एक बृहत् लौह कपाट; यह पिंजरा ही बना मेरा निर्दिष्ट वासस्थान। कमरे के बाहर था एक छोटा-सा पथरीला आँगन और ईंट की ऊँची दीवार, सामने था लकड़ी का दरवाज़ा। उस दरवाज़े के ऊपरी भाग में मनुष्य की आँख की ऊँचाई पर था एक गोलाकार छेद, दरवाज़ा बन्द होने पर सन्तरी उसमें आँख सटा थोड़ी-थोड़ी देर में झाँकता था कि क़ैदी क्या कर रहा है। किन्तु मेरे आँगन का दरवाज़ा प्रायः खुला रहता। ऐसे छः कमरे पास-पास थे, इन्हें कहा जाता था ६ 'डिक्री'। डिक्री का अर्थ है, विशेष दण्ड का कमरा, न्यायाधीश या जेल सुपरिंटेंडेंट के हुकुम से जिन्हें निर्जन कारावास का दण्ड मिलता था उन्हें ही इन छोटे-छोटे गह्वरों में रहना होता था। इन निर्जन कारावासों की भी श्रेणी होती है। जिन्हें विशेष सज़ा मिलती है उनके आँगन का दरवाज़ा बन्द रहता है; मनुष्य संसार से पूर्णतया वञ्चित हो जाते हैं, उनका जगत् से एकमात्र सम्पर्क रह जाता है सन्तरी की आँखों और दो समय खाना लाने वाले क़ैदी से। सी.आई.डी. की नज़रों में हेमचन्द्र दास मुझसे भी ज़्यादा आतंककारी थे, इसीलिए उनके लिए ऐसी व्यवस्था की गयी। इस सज़ा के ऊपर भी सज़ा है—हाथ-पैर में हथकड़ी और बेड़ी पहन निर्जन कारावास में रहना। यह चरम दण्ड केवल जेल की शान्ति भंग करने वालों या मारपीट करने वालों के लिए नहीं, बार-बार काम में ग़फ़लत करने से भी यह दण्ड मिलता है। निर्जन कारावास के मुकद्दमे के आसामी को दण्ड के रूप में ऐसा कष्ट देना नियम के विरुद्ध है परन्तु स्वदेशी या 'वन्देमातरम्' क़ैदी नियम से बाहर हैं, पुलिस की इच्छा से उनके लिए भी सुव्यवस्था होती है।

बहुप्रयोजक थाली और कटोरा

हमारा वासस्थान था तो ऐसा, लेकिन साज-सरंजाम में भी हमारे सहृदय कर्मचारियों ने आतिथ्य संस्कार में कोई त्रुटि नहीं की। एक थाली और एक कटोरा आँगन को सुशोभित करते थे। ख़ूब अच्छी तरह माँजे जाने पर मेरा सर्वस्व

थाली और कटोरा चाँदी की तरह इस क़दर चमकते कि प्राण जुड़ा जाते और उस निर्दोष किरणमयी उज्ज्वलता में 'स्वर्गजगत्' में विशुद्ध ब्रिटिश राजतन्त्र की उपमा पर राजभक्ति के निर्मल आनन्द का अनुभव करता था। दोषों में एक दोष था कि थाली भी उसे समझ कर आनन्द में इतनी उत्फुल्ल हो उठती थी कि अँगुली का ज़रा-सा ज़ोर पड़ते ही वह घुमक्कड़ अरब-दरवेशों की तरह चक्कर काटने लगती, ऐसे में एक हाथ से खाना और एक हाथ से थाली पकड़े रहने के सिवा कोई चारा नहीं रहता। नहीं तो चक्कर काटते-काटते जेल का अतुलनीय मुट्ठी-भर अन्न लेकर वह भाग जाने का उपक्रम करती। थाली की अपेक्षा कटोरा था और भी अधिक प्रिय और उपकारी। जड़ पदार्थों में मानों यह था ब्रिटिश 'सिविलियन'। सिविलियनों में जैसे सब कार्यों में स्वभावजात निपुणता और योग्यता होती है, जज, शासनकर्ता, पुलिस, शुल्क-विभाग के कर्ता, म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष, शिक्षक, धर्मोपदेशक, जो चाहो वही, कहने भर से ही, बन सकते हैं—जैसे उनके लिए, एक शरीर में, एक ही साथ अनुसन्धाता, अभियोगकर्ता, पुलिस, विचारक और कभी-कभी वादी के परामर्शदाता का भी प्रीतिसम्मिलन सहज साध्य था, वैसा ही था मेरा प्यारा कटोरा भी। कटोरे की जात नहीं, विचार नहीं। कारागृह में उसी कटोरे से पानी ले शौच किया, उसी कटोरे से मुँह धोया, स्नान किया, कुछ देर बाद उसी में खाना पड़ा, उसी कटोरे में दाल या तरकारी डाली गयी, उसी कटोरे से पानी पिया और कुल्ला किया। ऐसी सर्वकार्यक्षम मूल्यवान् वस्तु अँगरेज़ों की जेल में ही मिलनी सम्भव है। कटोरा मेरे लिए ये सब सांसारिक उपकार कर, योग-साधना में भी सहायक बना। घृणा-परित्याग कराने का ऐसा सहायक और उपदेशक कहाँ पाऊँगा?

हमारे शौच की अतुलनीय व्यवस्था

निर्जन कारावास की पहली अवधि के बाद जब हमें एक साथ रखा गया तब मेरे सिविलियन के अधिकारों का पृथकीकरण हुआ,—अधिकारियों ने शौच के लिए अन्य उपकरण जुटाया किन्तु महीने-भर में घृणा पर क़ाबू पाने का बिन माँगा पाठ पढ़ लिया था। शौच की सारी व्यवस्था ही मानों इस संयम की शिक्षा को ध्यान में रख कर की गयी थी। पहले कहा है, निर्जन कारावास विशेष दण्ड में गिना जाता है और उस दण्ड का मूल सिद्धान्त है जितना सम्भव हो मनुष्य-संसर्ग और मुक्त आकाश-सेवन का वर्जन। बाहर

शौच की व्यवस्था करने से तो यह सिद्धान्त भंग होता, अतः कोठरी में ही तारकोल-पुती दो टोकरियाँ दी जाती थीं। सवेरे-शाम मेहतर साफ़ कर जाता, तीव्र आन्दोलन और मर्मस्पर्शी भाषण देने पर और समय भी सफ़ाई हो जाती, किन्तु असमय पाख़ाना जाने से घण्टों-घण्टों तक दुर्गन्ध भोग कर प्रायश्चित्त करना पड़ता। निर्जन कारावास की दूसरी अवधि में इसमें थोड़ा-बहुत सुधार हुआ, किन्तु सुधार होता है पुराने ज़माने के मूलतत्त्वों को अक्षुण्ण रखते हुए शासन में सुधार। किं बहुना, इस छोटी-सी कोठरी में ऐसी व्यवस्था होने से हमेशा, विशेषकर खाने के समय और रात को, भारी असुविधा भोगनी पड़ती थी। जानता हूँ, शयनागार के साथ पाख़ाना रखना प्रायः विलायती सभ्यता की विशेषता है, किन्तु एक छोटे-से कमरे में शयनागार, भोजनालय और पाख़ाना—इसे कहते हैं too much of a good thing (भलाई की भी सीमा पार कर जाना)। हम ठहरे कुअभ्यासग्रस्त भारतवासी, सभ्यता के इतने ऊँचे सोपान पर पहुँचना हमारे लिए कष्टकर है।

नहाने का सुख

गृह-सामग्री में और भी चीज़ें थीं: एक नहाने की बाल्टी, पानी रखने को एक टीन की नलाकार बाल्टी और दो जेल के कम्बल। स्नान की बाल्टी आँगन में रखी रहती, वहीं नहाता था। पहले हमारे भाग्य में पानी का कष्ट नहीं था पर बाद में यह भी भोगना पड़ा। पहले पास के गोहालघर (गोशाला) के क़ैदी नहाते समय मेरी इच्छानुसार बाल्टी में पानी भर देते थे, इसीलिए नहाने का समय ही था जेल की तपस्या के बीच प्रतिदिन गृहस्थ की विलासवृत्ति और सुखप्रियता को तृप्त करने का अवसर। दूसरे आसामियों के भाग्य में इतना भी नहीं जुटा था; एक बाल्टी पानी से ही उन्हें शौच, बर्तन-मँजाई, स्नान सब करना होता था। विचाराधीन क़ैदी थे इसीलिए इतना-सा विलास भी मिला हुआ था, क़ैदियों को तो दो-चार कटोरे पानी में ही स्नान करना पड़ता था। अँगरेज़ कहते हैं कि भगवत्-प्रेम व शरीर की स्वच्छन्दता प्रायः समान और दुर्लभ सद्गुण हैं, जेलों में यह व्यवस्था इस प्रवाद की यथार्थता को सिद्ध करने के लिए है या अतिरिक्त स्नान के सुख से क़ैदियों के अनिच्छा-जनित तपस्या के रस-भंग होने के भय से यह व्यवस्था प्रचलित की गयी है, यह निर्णय करना कठिन है। आसामी अधिकारियों की इस दया को काक-स्नान

कह खिल्ली उड़ाते थे। मनुष्यमात्र ही है असन्तोषप्रिय।

पानी की व्यवस्था

नहाने की व्यवस्था से पीने के पानी की व्यवस्था और भी निराली थी। गर्मी का मौसम, मेरे छोटे-से कमरे में हवा का प्रवेश लगभग निषिद्ध था किन्तु मई महीने की उग्र और प्रखर धूप बेरोक-टोक घुस आती थी। कमरा जलती भट्टी-सा हो उठता था। इस भट्टी में तपते हुए अदम्य जल-तृष्णा को कम करने का उपाय था वही टीन की बाल्टी का अर्धउष्ण जल। बार-बार वही पीता था, प्यास तो नहीं बुझती थी वरन् पसीना छूटता और कुछ देर में फिर से प्यास लग आती थी। पर हाँ, किसी-किसी के आँगन में मिट्टी की सुराही रखी होती, वे अपने पूर्वजन्म की तपस्या का स्मरण कर अपने को धन्य मानते। तब घोर पुरुषार्थवादी को भी भाग्य में विश्वास करने को बाध्य होना पड़ता था, किसी के भाग्य में ठण्डा पानी बदा था तो किसी के भाग्य में प्यास, सब था भाग्य का फेर। अधिकारीगण, किन्तु, पूर्ण पक्षपातरहित हो, कलसी या बाल्टी वितरण करते थे। इस यदृच्छा-लाभ से मेरे सन्तुष्ट होने या न होने से भी मेरा जल-कष्ट जेल के सहृदय डाक्टर बाबू को असह्य हो उठा। वे कलसी जुटाने में लगे किन्तु क्योंकि इस बन्दोबस्त में उनका हाथ नहीं था इसलिए बहुत दिन तक इसमें सफल नहीं हुए, अन्त में उनके ही कहने से मुख्य जमादार ने कहीं से कलसी का आविष्कार किया। उससे पहले ही तृष्णा के साथ अनेक दिन के घोर संग्राम से मैं पिपासा-मुक्त हो चला था।

शयन-सुख

इस तप्त कमरे में बिस्तर के नाम को थे दो जेल के बने मोटे कम्बल। तकिया नदारद, एक कम्बल को नीचे बिछा लेता और दूसरे की तह करके तकिया बना सोता। जब गरमी असह्य हो उठती और बिस्तर पर न रहा जाता तब मिट्टी में लोट लगा, बदन ठण्डा कर आराम पाता था। माता वसुन्धरा की शीतल गोद के स्पर्श का क्या सुख है यह तभी जाना। फिर भी, जेल में उस गोद का स्पर्श बहुत कोमल नहीं होता, उससे निद्रा के आगमन में बाधा आती, अतः कम्बल की शरण लेनी पड़ती। जिस दिन

वर्षा होती वह दिन बड़े आनन्द का दिन होता। इसमें भी एक असुविधा यह थी कि झड़ी-झंझा होते ही धूल, पत्ते और तिनकों से भरे प्रभञ्जन के ताण्डव-नृत्य के बाद मेरे पिंजरे के अन्दर बाढ़-सी आ जाती। ऐसे में रात को भीगा कम्बल ले कमरे के एक कोने में दुबकने के सिवा और कोई चारा न रहता। प्रकृति की इस विशिष्ट लीला के समाप्त होने पर भी जलप्लावित धरती जब तक सूख नहीं जाती थी तब तक निद्रादेवी की आशा छोड़ विचारों का दामन पकड़ना पड़ता था। एकमात्र सूखी जगह थी शौच के आसपास, किन्तु वहाँ कम्बल बिछाने की प्रवृत्ति न होती। इन सब असुविधाओं के होते हुए भी झड़ी-झंझा के दिन भीतर ख़ूब हवा आती और कमरे की जलती भट्टी का ताप दूर हो जाता, इसलिए झड़ी-झंझा का सादर स्वागत करता।...

निर्जन कारावास का सुख

कम्बल, थाली-कटोरी का प्रबन्ध कर जेलर के चले जाने पर कम्बल पर बैठ मैं जेल का दृश्य देखने लगा। लालबाज़ार की हवालात की अपेक्षा यह निर्जन कारावास अधिक अच्छा लगा। वहाँ उस विशाल कमरे की निर्जनता मानों अपनी विशाल काया को विस्तारित करने का अवकाश पा निर्जनता को और भी गहन कर दे रही थी। यहाँ छोटे-से कमरे की दीवारें मानों बन्धु-रूप में पास आ, ब्रह्ममय हो, आलिंगन में भर लेने को तैयार थीं। वहाँ दो तल्ले के कमरे की ऊँची-ऊँची खिड़कियों से बाहर का आकाश भी नहीं दीखता था, इस संसार में पेड़-पत्ते, मनुष्य, पशु-पक्षी, घर-द्वार भी कुछ है, बहुत बार उसकी कल्पना करना भी कठिन हो जाता था। यहाँ आँगन का दरवाज़ा खुला होने पर सरियों के पास बैठने से बाहर जेल की खुली जगह और क़ैदियों का आना-जाना देखा जा सकता है। आँगन की दीवार से सटा वृक्ष था, उसकी नयनरञ्जक नीलिमा से प्राण जुड़ा जाते। छह डिक्री के छह कमरों के सामने जो सन्तरी घूमता रहता उसका चेहरा और पदचाप बहुत बार परिचित बन्धु के चलने-फिरने की तरह प्रिय लगता। कोठरी के पार्श्ववर्ती गोहालघर के क़ैदी कोठरी के सामने से गौएँ चराने ले जाया करते। गौ और गोपाल थे प्रतिदिन के प्रिय दृश्य। अलीपुर के निर्जन कारावास में अपूर्व प्रेम की शिक्षा पायी। यहाँ आने से पहले मनुष्यों के

साथ मेरा व्यक्तिगत प्रेम अतिशय छोटे घेरे में घिरा था और पशु-पक्षियों पर रुद्ध प्रेम-स्रोत तो बहता ही नहीं था। याद आता है, रवि बाबू की एक कविता में भैंस के प्रति एक ग्राम्य बालक का गभीर प्रेम बहुत सुन्दर ढंग से वर्णित हुआ है, पहली बार पढ़ने पर वह ज़रा भी हृदयंगम नहीं हुई थी, भाव-वर्णन में अतिशयोक्ति और अस्वाभाविकता का दोष देखा था। अब पढ़ने पर उसे दूसरी ही दृष्टि से देखता। अलीपुर में रह कर समझ सका कि सब तरह के जीवों पर मनुष्य के प्राणों में कितना गभीर स्नेह स्थान पा सकता है, गौ, पक्षी, चींटी तक को देख कितने तीव्र आनन्द के स्फुरण में मनुष्य का प्राण अस्थिर हो सकता है।

अद्‌भुत भोजन और कुशल-क्षेम

कारावास का पहला दिन शान्ति से कट गया। सभी कुछ था नया, इससे मन में स्फूर्ति जगी। लालबाज़ार की हवालात से तुलना करने पर इस अवस्था में भी प्रसन्नता हुई और भगवान् पर निर्भर था इसलिए यहाँ निर्जनता भी भारी नहीं पड़ी। जेल के खाने की अद्‌भुत सूरत देख कर भी इस भाव में कोई व्याघात नहीं पड़ा। मोटा भात, उसमें भी भूसी, कंकड़, कीड़ा, बाल आदि कितने तरह के मसालों से पूर्ण—स्वादहीन दाल में जल का अंश ही अधिक, तरकारी में निरा घास-पात का साग। मनुष्य का खाना इतना स्वादहीन और निस्सार हो सकता है यह पहले नहीं जानता था। साग की यह विषण्ण गाढ़ी कृष्ण मूर्ति देख कर ही डर गया, दो ही ग्रास खा उसे भक्तिपूर्ण नमस्कार कर एक ओर सरका दिया। सब क़ैदियों के भाग्य में एक ही तरकारी बदी थी, और एक बार कोई तरकारी शुरू हो जाये तो अनन्त काल तक वही चलती थी। उस समय साग का राज्य था। दिन बीते, पखवारे बीते, माह बीते किन्तु दोनों समय वही साग, वही दाल, वही भात। चीज़ें तो क्या बदलनी थीं, रूप में भी क़तई परिवर्तन नहीं होता था, उसका वही नित्य, सनातन, अनाद्यनन्त, अपरिणामातीत अद्वितीय रूप! दो दिन में ही क़ैदी में इस नश्वर माया-जगत् के स्थायित्व पर विश्वास जनमने लगेगा। इसमें भी अन्य क़ैदियों की अपेक्षा मैं भाग्यशाली रहा, यह भी डाक्टर बाबू की दया से। उन्होंने हस्पताल से मेरे लिए दूध की व्यवस्था की थी, इससे कुछ दिन के लिए साग-दर्शन से मुक्ति मिली।

उस रात जल्दी ही सो गया; किन्तु निश्चिन्त निद्रा निर्जन कारावास का नियम नहीं, उससे क़ैदियों की सुखप्रियता जग सकती है। इसीलिए नियम है कि जितनी बार पहरा बदले उतनी बार क़ैदी को हाँक मार कर उठाया जाता है और हुंकारा न भरने तक छोड़ते नहीं। जो-जो छह डिक्री का पहरा देते थे उनमें से बहुत-से इस कर्तव्य-पालन से विमुख थे,—सिपाहियों में प्रायः ही कठोर कर्तव्य-ज्ञान की अपेक्षा दया और सहानुभूति अधिक थी, विशेषतः हिन्दुस्तानियों के स्वभाव में। किन्तु कुछ लोगों ने नहीं बख़्शा। वे हमें इस तरह जगा यह कुशल संवाद पूछते : "बाबू, ठीक हैं तो?" यह असमय का हँसी-मज़ाक सदा नहीं सुहाता पर समझ गया था कि जो ऐसा करते हैं वे सरल भाव से नियमवश ही हमें उठाते हैं। कई दिन विरक्त होते हुए भी इसे सह गया। अन्ततः, निद्रा की रक्षा के लिए धमकी देनी पड़ी। दो-चार बार धमकाने के बाद देखा कि रात को कुशल-क्षेम पूछने की प्रथा अपने-आप ही उठ गयी।

'लपसी'-माहात्म्य

अगले दिन सवेरे सवा चार बजे जेल की घण्टी बजी। क़ैदियों को जगाने के लिए यह पहली घण्टी थी। कुछ मिनट बाद दूसरी बजती, इसके बाद क़ैदी पंक्तिबद्ध हो बाहर आ हाथ-मुँह धो, 'लपसी' खा दिन-भर की मशक़्क़त में लग जाते। इतनी घण्टियों के बजते हुए सोना असम्भव जान मैं भी उठ जाता। पाँच बजे लौह-द्वार खोला जाता, मैं हाथ-मुँह धो फिर से कमरे में आ बैठा। कुछ देर बाद मेरे दरवाज़े पर लपसी हाज़िर हुई किन्तु उस दिन उसे खाया नहीं, केवल चाक्षुष परिचय हुआ। उसके कुछ दिन बाद पहली बार इस परमान्न का भोग लगाया। लपसी, अर्थात् माँडसहित उबला भात, यही थी क़ैदियों की छोटी हाज़िरी। लपसी की त्रिमूर्ति या तीन अवस्थाएँ हैं। पहले दिन लपसी का प्राज्ञभाव, अमिश्रित मूलपदार्थ, शुद्ध शिव शुभ्र-मूर्ति। दूसरे दिन लपसी का हिरण्यगर्भ रूप, दाल के साथ सीजा हुआ खिचड़ी के नाम से अभिहित, पीतवर्ण, नाना धर्मसंकुल। तीसरे दिन थोड़े-से गुड़ में मिश्रित लपसी की विराट् मूर्ति, धूसर वर्ण, कुछ परिमाण में मनुष्य के व्यवहार-योग्य। प्राज्ञ और हिरण्यगर्भ का सेवन साधारण मर्त्य मनुष्य के बूते से बाहर मान मैंने उसे त्याग दिया था। कभी-कभार विराट्

के दो ग्रास उदरस्थ कर ब्रिटिश राज्य के नाना सद्‌गुण और पाश्चात्य सभ्यता के उच्च दर्जे के humanitarianism (लोकहितवाद) के बारे में सोच-सोच कर आनन्दमग्न होता रहता था। कहना चाहिये कि लपसी ही था बंगाली क़ैदियों का एकमात्र पुष्टिकर आहार, बाक़ी सब था सारशून्य। वह होने से भी क्या होगा? उसका जैसा स्वाद था, वह केवल भूख से सताये जाने पर ही खाया जा सकता है, वह भी ज़ोर-ज़बरदस्ती, मन को बहुत समझा-बुझाकर।

उस दिन साढ़े ग्यारह बजे स्नान किया। घर से जो पहन कर आया था, पहले चार-पाँच दिन वही पहने रहना पड़ा। नहाते समय गोहालघर के जो वृद्ध क़ैदी वॉर्डर मेरी देखरेख के लिए नियुक्त हुए थे उन्होंने कहीं से डेढ़ हाथ चौड़ा एंडी का कपड़ा जुटा दिया था, अपने एकमात्र कपड़े सूखने तक वही पहने बैठा रहता। मुझे कपड़े धोने और बर्तन माँजने नहीं पड़ते थे, गोहालघर का एक क़ैदी यह कर देता था। ग्यारह बजे खाना। कमरे की छितनी के सान्निध्य से बचने के लिए ग्रीष्म की धूप सहते हुए प्रायः ही आँगन में खाया करता। सन्तरी भी इसमें बाधा न देते। शाम का खाना होता पाँच-साढ़े पाँच बजे। उसके बाद लौह-द्वार खुलना निषिद्ध था। सात बजे शाम का घण्टा बजता। मुख्य जमादार क़ैदी वॉर्डरों को इकट्ठा कर उच्च स्वर में नाम पढ़ते जाते थे, उसके बाद सब अपनी-अपनी जगह चले जाते। श्रान्त क़ैदी निद्रा की शरण ले जेल के इस एकमात्र सुख का अनुभव करते। इस समय दुर्बलचेता अपने दुर्भाग्य या भावी जेल-दुःख की चिन्ता कर रोया करते। भगवद्-भक्त नीरव रात्रि में ईश्वर का सान्निध्य अनुभव कर प्रार्थना या ध्यान में आनन्द लूटते। रात को इन अभागे, पतित, समाज-पीड़ित तीन सहस्र ईश्वरसृष्ट प्राणियों का यह अलीपुर जेल, प्रकाण्ड यन्त्रणा-गृह विशाल नीरवता में डूब जाता।...

भगवान् मंगलमय हैं

मेरे निर्जन कारावास के समय डाक्टर डैली और सहकारी सुपरिंटेंडेंट साहब प्रायः हर रोज़ मेरे कमरे में आ दो-चार बातें कर जाते। पता नहीं क्यों, मैं शुरू से ही उनका विशेष अनुग्रह और सहानुभूति पा सका था। मैं उनके साथ कोई विशेष बात न करता, वे जो पूछते उसका उत्तर-भर

दे देता। वे जो विषय उठाते वह या तो चुपचाप सुनता या केवल दो-एक सामान्य बात कह चुप हो जाता। तथापि वे मेरे पास आना न छोड़ते। एक दिन डैली साहब ने मुझसे कहा कि मैंने सहकारी सुपरिंटेंडेंट को कह कर बड़े साहब को मना लिया है कि तुम प्रतिदिन सवेरे-शाम डिक्री के सामने टहल सकोगे। तुम सारा दिन एक छोटी-सी कोठरी में बन्द रहो यह मुझे अच्छा नहीं लगता, इससे मन ख़राब होता है और शरीर भी। उस दिन से मैं सवेरे-शाम डिक्री के आगे खुली जगह में घूमने लगा। शाम को दस, पन्द्रह, बीस मिनट घूमता, लेकिन सवेरे एक घण्टा, किसी-किसी दिन दो घण्टे तक बाहर रहता, समय की कोई पाबन्दी नहीं थी। यह समय बहुत अच्छा लगता। एक तरफ़ जेल का कारख़ाना, दूसरी तरफ़ गोहालघर— मेरे स्वाधीन राज्य की दो सीमाएँ। कारख़ाने से गोहालघर, गोहालघर से कारख़ाने तक घूमते-घूमते या तो उपनिषद् के गभीर, भावोद्दीपक, अक्षय शक्तिदायक मन्त्रों की आवृत्ति करता या फिर क़ैदियों का कार्यकलाप और यातायात देख 'सर्वघट में नारायण हैं' इस मूल सत्य को उपलब्ध करने की चेष्टा करता। वृक्ष, गृह, प्राचीर, मनुष्य, पशु, पक्षी, धातु और मिट्टी में, सर्वभूतों में **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** मन्त्र का मन-ही-मन उच्चारण कर इस उपलब्धि को आरोपित करता। यह करते-करते ऐसा भाव हो जाता कि कारागार और कारागार न लगता। वह उच्च प्राचीर, वह लौह कपाट, वह सफ़ेद दीवार, वह सूर्य-रश्मि-दीप्त, नील-पत्र शोभित वृक्ष, वह छोटा-मोटा सामान मानों अब अचेतन नहीं रहा, सर्वव्यापी, चैतन्यपूर्ण हो सजीव हो उठा, ऐसा लगता कि वे मुझसे स्नेह करते हैं, मुझे आलिंगन में भर लेना चाहते हैं। मनुष्य, गौ, चींटी और विहंग चल रहे हैं, उड़ रहे हैं, गा रहे हैं, बातें कर रहे हैं, पर है यह सब प्रकृति की क्रीड़ा; भीतर एक महान् निर्मल, निर्लिप्त आत्मा शान्तिमय आनन्द में निमग्न हो विराजमान है। कभी-कभी ऐसा अनुभव होता मानों भगवान् उस वृक्ष के नीचे खड़े आनन्द की वंशी बजा रहे हैं, और उस माधुर्य से मेरा हृदय मोह ले रहे हैं। सदा यह एहसास होने लगा कि कोई मुझे आलिंगन में भर रहा है, कोई मुझे गोद में लिये हुए है। इस भावस्फुटन से मेरे सारे मन-प्राण को अधिकृत कर एक निर्मल महती शान्ति विराजने लगी, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। प्राणों का कठिन आवरण खुल गया और सभी जीवों पर प्रेम का

स्रोत उमड़ पड़ा। प्रेम के साथ दया, करुणा, अहिंसा इत्यादि सात्त्विक भाव मेरे रजःप्रधान स्वभाव को अभिभूत कर और अधिक पनपने लगे। और जैसे-जैसे वे बढ़ने लगे वैसे-वैसे आनन्द भी बढ़ा एवं निर्मल शान्तिभाव गभीर हुआ। मुक़द्दमे की दुश्चिन्ता पहले ही दूर हो गयी थी, अब उससे उलटा विचार मन में आया। भगवान् मंगलमय हैं, मेरे मंगल के लिए ही मुझे कारागृह में लाये हैं, कारामुक्ति और अभियोग-खण्डन अवश्य ही होगा यह दृढ़ विश्वास जम गया। इसके बाद बहुत दिनों तक मुझे जेल में कोई भी कष्ट भोगना नहीं पड़ा।

मुक़द्दमा शुरू हुआ

इस अवस्था को घनीभूत होने में कुछ दिन लगे, इसी बीच मजिस्ट्रेट की अदालत में मुक़द्दमा शुरू हुआ। निर्जन कारावास की नीरवता से हठात् बाह्य जगत् के कोलाहल में लाये जाने पर शुरू-शुरू में मन बड़ा विचलित हुआ, साधना का धैर्य टूट गया और पाँच-पाँच घण्टे तक मुक़द्दमे के नीरस और विरक्तिकर बयान सुनने को मन किसी भी तरह राज़ी नहीं हुआ। पहले अदालत में बैठ साधना करने की चेष्टा करता, लेकिन अनभ्यस्त मन प्रत्येक शब्द और दृश्य की ओर खिंच जाता, शोरगुल में वह चेष्टा व्यर्थ चली जाती, बाद में भावपरिवर्तन हुआ, समीपवर्ती शब्द और दृश्य मन से बाहर ठेल सारी चिन्तन-शक्ति को अन्तर्मुखी करने की शक्ति जनमी, किन्तु यह मुक़द्दमे की प्रथम अवस्था में नहीं हुआ, तब ध्यान-धारणा की प्रकृत क्षमता नहीं थी। इसीलिए यह वृथा चेष्टा त्याग, बीच-बीच में सर्वभूतों में ईश्वर के दर्शन कर सन्तुष्ट रहता, बाक़ी समय विपत्ति के साथियों की बातों और उनके कार्य-कलाप पर ध्यान देता, दूसरा कुछ सोचता, या कभी नॉर्टन साहब की श्रवण-योग्य बात या गवाहों की गवाही भी सुनता। देखता कि निर्जन कारागृह में समय काटना जितना सहज और सुखकर हो उठा है, जनता के बीच और इस गुरुतर मुक़द्दमे के जीवन-मरण के खेल के बीच समय काटना उतना सहज नहीं। अभियुक्त लड़कों का हँसी-मज़ाक और आमोद-प्रमोद सुनना और देखना बड़ा अच्छा लगता, नहीं तो अदालत का समय केवल विरक्तिकर ही महसूस होता। साढ़े चार बजे क़ैदियों की गाड़ी में बैठ सानन्द जेल लौट आता।

ठाठ-बाट क्रमशः कम होने लगा

पन्द्रह-सोलह दिन की बन्दी अवस्था के बाद स्वाधीन मनुष्य-जीवन का संसर्ग और एक-दूसरे का मुख देख दूसरे क़ैदी अत्यन्त आनन्दित हुए। गाड़ी में चढ़ते ही उनकी हँसी और बातों का फ़व्वारा फूट पड़ता और जो दस मिनट उन्हें गाड़ी में मिलते थे उसमें पल-भर को भी वह स्रोत न थमता। पहले दिन हमें ख़ूब सम्मान के साथ अदालत ले गये। हमारे साथ ही थी यूरोपीयन सार्जेंटों की छोटी पलटन और उनके साथ थीं गोलीभरी पिस्तौलें। गाड़ी में चढ़ते समय सशस्त्र पुलिस की एक टुकड़ी हमें घेरे रहती और गाड़ी के पीछे परेड करती, उतरते समय भी यही आयोजन था। इस साज-सज्जा को देख किसी-किसी अनभिज्ञ दर्शक ने निश्चय ही यह सोचा होगा कि ये हास्य-प्रिय अल्पवयस्क लड़के न जाने कितने दुःसाहसी विख्यात महायोद्धाओं का दल हैं। न जाने उनके प्राणों और शरीर में कितना साहस और बल है जो ख़ाली हाथ सौ पुलिस और गोरों की दुर्भेद्य प्राचीर भेद, पलायन करने में सक्षम हैं। इसीलिए शायद उन्हें इतने सम्मान के साथ इस तरह ले गये। कुछ दिन यह ठाठ चला, फिर क्रमशः कम होने लगा, अन्त में दो-चार सार्जेंट हमें ले जाते और ले आते। उतरते समय वे ज़्यादा ख़याल नहीं करते थे कि हम कैसे जेल में घुसते हैं; हम मानों स्वाधीन भाव से घूम-फिर कर घर लौट रहे हों, उसी तरह जेल में घुसते। ऐसी असावधानी और शिथिलता देख पुलिस कमिश्नर साहब और कुछ सुपरिंटेंडेंट क्रुद्ध हो बोले, "पहले दिन पचीस-तीस सार्जेंटों की व्यवस्था की गयी थी, आजकल देखता हूँ चार-पाँच भी नहीं आते।" वे सार्जेंटों की भर्त्सना करते और रक्षण-निरीक्षण की कठोर व्यवस्था करते; उसके बाद दो-एक दिन और दो सार्जेंट आते और फिर वही पहले जैसी शिथिलता आरम्भ हो जाती! सार्जेंटों ने देखा कि बम-भक्त बड़े निरीह और शान्त लोग हैं, पलायन में उनका कोई प्रयास नहीं, किसी पर आक्रमण करने या हत्या करने की भी मंशा नहीं, उन्होंने सोचा कि हम क्यों अपना अमूल्य समय इस विरक्तिकर कार्य में नष्ट करें। पहले अदालत में घुसते और निकलते समय हमारी तलाशी लेते थे, उससे हम सार्जेंटों के कोमल करस्पर्श का सुख अनुभव करते, इसके अलावा इस तलाशी से किसी के लाभ या क्षति की सम्भावना नहीं थी। स्पष्ट था कि इस तलाशी की आवश्यकता

में हमारे रक्षकों की गभीर अनास्था है। दो-चार दिन बाद यह भी बन्द हो गयी। हम अदालत में किताब, रोटी-चीनी जो इच्छा हो निर्विघ्न ले जाते। पहले-पहल छिपा कर, बाद में खुले आम। हम बम या पिस्तौल चलायेंगे, उनका यह विश्वास शीघ्र ही उठ गया। किन्तु मैंने देखा कि एक भय सार्जेंटों के मन से नहीं गया। कौन जाने किसके मन में कब मजिस्ट्रेट साहब के महिमान्वित मस्तक पर जूते फेंकने की बदनीयत पैदा हो जाये, ऐसा हुआ तो सर्वनाश। अतः जूते भीतर ले जाना विशेषतया निषिद्ध था, और उस विषय में सार्जेंट हमेशा सतर्क रहते। और किसी तरह की सावधानता के प्रति आग्रह नहीं देखा।

मुक़द्दमे के विचित्र जीव

मुक़द्दमे का स्वरूप कुछ विचित्र था। मजिस्ट्रेट, परामर्शदाता, साक्षी, साक्ष्य Exhibits (साक्ष्य-सामग्री), आसामी सभी विचित्र। दिन-पर-दिन उन्हीं गवाहों और Exhibits का अविराम प्रवाह, उसी परामर्शदाता का नाटकोचित अभिनय, उसी बालक-स्वभाव मजिस्ट्रेट की बालकोचित चपलता और लघुता। इस अपूर्व दृश्य को देखते-देखते बहुत बार मन में यह कल्पना उठती कि हम ब्रिटिश विचारालय में न बैठ किसी नाटकगृह के रंगमञ्च पर या किसी कल्पनापूर्ण औपन्यासिक राज्य में बैठे हैं। अब उस राज्य के सब विचित्र जीवों का संक्षिप्त वर्णन करता हूँ।

इस नाटक के प्रधान अभिनेता थे सरकार बहादुर के परामर्शदाता नॉर्टन साहब। प्रधान अभिनेता ही क्यों, इस नाटक के रचयिता, सूत्रधार (Stage Manager) और साक्षी-स्मारक (prompter) भी थे,—ऐसी वैचित्र्यमयी प्रतिभा जगत् में विरल है। परामर्शदाता नॉर्टन थे मद्रासी साहब, इसीलिए शायद थे बंगाली बैरिस्टर-मण्डली की प्रचलित नीति और भद्रता से अनभ्यस्त एवं अनभिज्ञ। वे कभी राष्ट्रीय महासभा के नेता रहे थे, शायद इसीलिए विरोध और प्रतिवाद सह नहीं सकते थे और विरोधी को शासित करने के आदी थे। ऐसी प्रकृति को लोग कहते हैं हिंस्रस्वभाव। नॉर्टन साहब कभी मद्रास कॉरपोरेशन के सिंह रहे कि नहीं, नहीं कह सकता पर हाँ, अलीपुर कोर्ट के सिंह तो थे ही। उनकी क़ानूनी अभिज्ञता की पैठ पर मुग्ध होना कठिन है—वह थी मानों ग्रीष्मकाल की शीत। किन्तु वक्तृता

के अनर्गल प्रवाह में, कथन-शैली में, बात की चोट से राई को पहाड़ बनाने की अद्‌भुत क्षमता में, निराधार या कुछ आधार लिये हुए कथनों को कहने की दुःसाहसिकता में, साक्षी और जूनियर बैरिस्टर की भर्त्सना में और सफ़ेद को काला करने की मनमोहिनी शक्ति में नॉर्टन साहब की अतुलनीय प्रतिभा देख मुग्ध होना ही पड़ता था। श्रेष्ठ परामर्शदाताओं की तीन श्रेणियाँ हैं—जो क़ानून के पाण्डित्य से और यथार्थ व्याख्या और सूक्ष्म विश्लेषण से जज के मन में प्रतीति जनमा सकते हैं; जो चतुराई के साथ साक्षी से सच्ची बात उगलवा और मुक़द्दमे-सम्बन्धी घटनाओं और विवेच्य विषय का दक्षता के साथ प्रदर्शन कर जज या जूरी का मन अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं; और जो ऊँची आवाज़ से, धमकियों से, वक्तृता के प्रवाह से साक्षी को हतबुद्धि कर, मुक़द्दमे के विषय को चमत्कारी ढंग से तोड़-मरोड़, गले के ज़ोर से जज या जूरी की बुद्धि भरमा मुक़द्दमे जीत सकते हैं। नॉर्टन साहब थे तीसरी श्रेणी में अग्रगण्य। यह कोई दोष की बात नहीं। वे ठहरे परामर्शदाता व्यवसायी आदमी, पैसा लेने वाले, जो पैसा दे उसका अभीप्सित उद्देश्य सिद्ध करना है उनका कर्तव्य-कर्म। आजकल ब्रिटिश क़ानून-प्रणाली में सच्ची बात बाहर निकालना वादी या प्रतिवादी का असल उद्देश्य नहीं, किसी भी तरह मुक़द्दमा जीतना ही है उद्देश्य। अतएव, परामर्शदाता वैसी ही चेष्टा करेंगे, नहीं तो उन्हें धर्मच्युत होना होगा। भगवान् द्वारा अन्य गुण न दिये जाने पर जो गुण हैं उनके बल पर ही मुक़द्दमा जीतना होगा, अतः नॉर्टन साहब स्वधर्म-पालन ही कर रहे थे। सरकार बहादुर उन्हें हर रोज़ हज़ार रुपये देती थी। यह अर्थव्यय वृथा जाने से सरकार बहादुर की क्षति होती, यह क्षति न हो इसके लिए नॉर्टन साहब ने प्राणपन से चेष्टा की थी। पर राजनीतिक मुक़द्दमे में आसामी को विशेष उदारता के साथ सुविधा देना और सन्देहजनक एवं अनिश्चित प्रमाण पर ज़ोर न देना ब्रिटिश क़ानून-पद्धति का नियम है। नॉर्टन साहब यदि इस नियम को सदा याद रखते तो, मेरे ख़याल में, उनके केस की कोई हानि न होती।...

हमारे नाटक के शेक्सपीयर

हमारे नाटक के शेक्सपीयर थे नॉर्टन साहब। किन्तु शेक्सपीयर और

नॉर्टन में मैंने एक प्रभेद देखा। संगृहीत उपादान का कुछ अंश शेक्सपीयर कहीं-कहीं छोड़ भी देते थे, पर नॉर्टन साहब अच्छा-बुरा, सत्य-मिथ्या, संलग्न-असंलग्न, अणोरणीयान् महतो महीयान् जो पाते, एक भी न छोड़ते, तिस पर निजी कल्पनासृष्ट प्रचुर Suggestion, Inference, Hypothesis (सुझाव, अनुमान, परिकल्पना) जुटा उन्होंने इतना सुन्दर Plot (कथानक) रचा कि शेक्सपीयर, डेफ़ो इत्यादि सर्वश्रेष्ठ कवि और उपन्यासकार इस महाप्रभु के आगे मात खा गये। आलोचक कह सकते हैं कि जैसे फ़ॉलस्टाफ़ के होटल के बिल में एक आने की रोटी और असंख्य गैलन शराब का समावेश था उसी तरह नॉर्टन साहब के Plot में एक रत्ती प्रमाण के साथ दस मन अनुमान और suggestions (सुझाव) थे। किन्तु आलोचक भी plot की परिपाटी और रचना-कौशल की प्रशंसा करने को बाध्य होगा। नॉर्टन साहब ने इस नाटक के नायक के रूप में मुझे ही पसन्द किया, यह देख मैं समधिक प्रसन्न हुआ। जैसे मिल्टन के "Paradise Lost" का शैतान, वैसे ही मैं भी था नॉर्टन साहब के Plot का कल्पनाप्रभूत महाविद्रोह का केन्द्रस्वरूप, असाधारण तीक्ष्णबुद्धि-सम्पन्न, क्षमतावान् और प्रतापशाली bold bad man (ढीठ बुरा आदमी)। मैं ही था राष्ट्रीय आन्दोलन का आदि और अन्त, स्रष्टा और त्राता, ब्रिटिश साम्राज्य का संहार-प्रयासी। उत्कृष्ट और तेजस्वी अंगरेज़ी लेख देखते ही नॉर्टन साहब उछल पड़ते और उच्च स्वर में कहते—अरविन्द घोष। आन्दोलन के जितने भी वैध, अवैध, सुशृंखलित अंग या अप्रत्याशित फल—वे सभी अरविन्द घोष की सृष्टि हैं, और क्योंकि वे अरविन्द की सृष्टि हैं इसलिए वैध होने पर भी उसमें अवैध अभिसंधि गुप्त रूप से निहित है। शायद उनका यह विश्वास था कि अगर मैं पकड़ा न गया तो दो साल के अन्दर-अन्दर अंगरेज़ों के भारतीय साम्राज्य का ध्वंस हो जायेगा। किसी फटे कागज़ के टुकड़े पर मेरा नाम पाते ही नॉर्टन साहब ख़ूब ख़ुश होते और इस परम मूल्यवान् प्रमाण को मजिस्ट्रेट के श्रीचरणों में सादर समर्पित करते। अफ़सोस है, कि मैं अवतार बन कर नहीं जनमा, नहीं तो मेरे प्रति उस समय की उनकी इतनी भक्ति और मेरे अनवरत ध्यान से नॉर्टन साहब निश्चित ही उसी समय मुक्ति पा जाते जिससे हमारी कारावास की अवधि और गवर्नमेंट का अर्थव्यय दोनों की ही बचत होती। सेशंस अदालत द्वारा मुझे निर्दोष प्रमाणित किये

जाने से नॉर्टन-रचित plot की सब श्री और गौरव नष्ट हो गया। बेरसिक बीचक्राफ़्ट 'हैमलेट' नाटक से हैमलेट को अलग करके बीसवीं सदी के श्रेष्ठ काव्य की हतश्री कर गये। समालोचक को यदि काव्य-परिवर्तन का अधिकार दे दिया जाये तो भला क्यों न होगी ऐसी दुर्दशा? नॉर्टन साहब को और एक दुःख था, कुछ गवाह भी ऐसे बेरसिक थे कि उन्होंने भी उनके रचित Plot के अनुसार गवाही देने से साफ़ इन्कार कर दिया। नॉर्टन साहब ग़ुस्से से लाल-पीले हो जाते, सिंह-गर्जना से उनके प्राण कँपा उन्हें धमकाते। जैसे कवि को स्वरचित शब्द के अन्यथा प्रकाशन पर और सूत्रधार को अपने दिये गये निर्देशों के विरुद्ध अभिनेता की आवृत्ति, स्वर या अंगभंगिमा पर न्यायसंगत और अदमनीय क्रोध आता है, वैसा ही क्रोध आता था नॉर्टन साहब को। बैरिस्टर भुवन चटर्जी के साथ हुए संघर्ष का कारण यह सात्त्विक क्रोध ही था। चटर्जी महाशय के जितना रसायनभिज्ञ पुरुष तो कोई नहीं देखा। उन्हें रत्ती भर भी समय-असमय का ज्ञान नहीं था। नॉर्टन साहब जब संलग्न-असंलग्न का विचार न कर केवल कवित्व की ख़ातिर जिस-तिस प्रमाण को घुसेड़ते, तब चटर्जी महाशय खड़े हो असंलग्न या inadmissible (अमान्य) कह आपत्ति करते। वे समझ न सके कि ये साक्ष्य इसलिए नहीं पेश किये जा रहे कि ये संलग्न या क़ानून-सम्मत हैं वरन् इसलिए कि नॉर्टनकृत नाटक में शायद उपयोगी हों। इस असंगत व्यवहार से नॉर्टन ही क्यों, बर्ली साहब तक झुँझला उठते। एक बार बर्ली साहब ने चटर्जी महाशय को बड़े करुण स्वर में कहा था, "Mr. Chatterjee, we were getting on very nicely before you came ," आपके आने से पहले हम निर्विघ्न मुक़द्दमा चला रहे थे। सच ही तो है, नाटक की रचना के समय बात-बात पर आपत्ति उठाने से नाटक भी आगे नहीं बढ़ता और दर्शकों को भी मज़ा नहीं आता।

परामर्शदाता नॉर्टन और मजिस्ट्रेट बर्ली साहब

यदि नॉर्टन साहब थे नाटक के रचयिता, प्रधान अभिनेता और सूत्रधार तो मजिस्ट्रेट बर्ली को कहा जा सकता है नाटककार का पृष्ठपोषक या patron। बर्ली साहब शायद थे स्कॉच जाति के गौरव। उनका चेहरा स्कॉटलैंड का स्मारक चिह्न था। ख़ूब गोरी, ख़ूब लम्बी, अति कृष, दीर्घ देहयष्टि

पर छोटा-सा सिर देख ऐसा लगता था जैसे अग्रभेदी आक्टोरलोनी के monument (स्मारक) पर छोटे-से आक्टोरलोनी बैठे हों, या क्लियोपेट्रा के obelisk (स्तम्भ) के शिखर पर एक पका नारियल रखा हो। उनके बाल थे धूसर वर्ण (sandy haired) और स्कॉटलैंड की सारी ठण्ड और बर्फ़ उनके चेहरे के भाव पर जमी हुई थी। जो इतना दीर्घकाय हो उसकी बुद्धि भी तद्रूप होनी चाहिये, नहीं तो प्रकृति की मितव्ययता के सम्बन्ध में सन्देह होता है। किन्तु इस प्रसंग में, बर्ली की सृष्टि के समय, लगता है, प्रकृति देवी कुछ अनमनी एवं अन्यमनस्क हो गयी थीं। अंगरेज़ कवि मार्लो ने इस मितव्ययता का infinite riches in a little room (छोटे-से भण्डार में असीम धन) कह वर्णन किया है किन्तु बर्ली का दर्शन कवि के वर्णन से विपरीत भाव मन में जगाता है—infinite room in little riches (असीम भण्डार में क्षुद्र धन)। सचमुच, इस दीर्घ देह में इतनी थोड़ी विद्याबुद्धि देख दुःख होता था और इस तरह के अल्पसंख्यक शासनकर्ताओं द्वारा तीस कोटि भारतवासी शासित हो रहे हैं यह याद कर अंगरेज़ों की महिमा और ब्रिटिश शासन-प्रणाली पर प्रगाढ़ भक्ति उमड़ती थी। श्रीयुत् व्योमकेश चक्रवर्ती द्वारा जिरह करते समय बर्ली साहब की विद्या की पोल खुली। इतने साल मजिस्ट्रेटगिरी करने के बाद भी यह निर्णय करने में उनका सिर घूम गया कि उन्होंने अपने करकमलों में यह मुक़द्दमा कब ग्रहण किया या कैसे मुक़द्दमा ग्रहण किया जाता है, इस समस्या को सुलझाने में असमर्थ हो चक्रवर्ती साहब पर इसका भार दे साहब स्वयं निष्कृति पाने के लिए सचेष्ट हुए। अभी भी यह प्रश्न मुक़द्दमे की अतिजटिल समस्याओं में से एक गिना जाता है कि बर्ली ने कब मुक़द्दमा अपने हाथ में लिया था। चटर्जी महाशय के प्रति किये गये जिस करुण निवेदन का उल्लेख मैंने किया है उससे भी साहब की चिन्तनधारा का अनुमान लगाया जा सकता है। शुरू से ही वे नॉर्टन साहब के पाण्डित्य और वाग्विलास से मन्त्रमुग्ध हो उनके वश में हो गये थे। ऐसे विनीत भाव से नॉर्टन द्वारा प्रदर्शित पथ का अनुसरण करते, नॉर्टन की हाँ में हाँ मिलाते, नॉर्टन के हँसने से हँसते, नॉर्टन के कुपित होने पर कुपित होते कि यह सरल शिशुवत् आचरण देख कभी-कभी मन में प्रबल स्नेह और वात्सल्य का आविर्भाव होता। बर्ली के स्वभाव में निरा लड़कपन था। उन्हें कभी भी मजिस्ट्रेट न मान सका,

ऐसा लगता मानों स्कूल का छात्र हठात् स्कूल का शिक्षक बन शिक्षक के उच्च मञ्च पर चढ़ बैठा है। ऐसे ही वे कोर्ट का काम चलाते। कोई उनके साथ अप्रिय व्यवहार करता तो स्कूली शिक्षक की तरह शासन करते। हममें से यदि कुछ मुक़द्दमे के प्रहसन से विरक्त हो आपस में बातें करने लगते तो बर्ली साहब स्कूल मास्टर की तरह बिगड़ने लगते, उनकी बात न सुनने पर सबको खड़े हो जाने की आज्ञा देते, उसका भी तुरन्त पालन न किया तो प्रहरी को कहते हमें खड़ा कर देने के लिए। हम स्कूलमास्टर के इस रंग-ढंग को देखने के इतने आदी हो गये थे कि जब बर्ली और चटर्जी महाशय का झगड़ा खड़ा हुआ तो हम प्रति क्षण इस आशा में थे कि अब बैरिस्टर साहब को खड़े रहने का दण्ड मिलेगा। बर्ली साहब ने लेकिन उलटा रास्ता पकड़ा, चिल्लाते हुए sit down, Mr. chatterjee (बैठ जाइये, मि.चटर्जी) कह अलीपुर स्कूल के इस नवागत उद्दण्ड छात्र को बिठा दिया। जैसे कोई-कोई मास्टर छात्र के किसी प्रश्न से या पढ़ाते समय अतिरिक्त व्याख्यान चाहने से खीज कर उसे डाँट देते हैं, बर्ली भी आसामी के वकील की आपत्ति पर खीज उसे डपट देते। कोई-कोई साक्षी नॉर्टन को परेशान करते। नॉर्टन सिद्ध करना चाहते थे कि अमुक लेख अमुक आसामी के हस्ताक्षर हैं, साक्षी यदि कहते कि नहीं, यह तो ठीक उस लेख की तरह नहीं, फिर भी हो सकता है, कहा नहीं जा सकता—बहुत-से साक्षी इसी तरह का उत्तर देते थे—तो नॉर्टन अधीर हो उठते। बक-झक कर, चिल्ला कर, डाँट-डपट कर किसी भी उपाय से अभीप्सित उत्तर उगलवाने की चेष्टा करते। उनका अन्तिम प्रश्न होता, "what is your belief ?" तुम क्या मानते हो, हाँ या ना? साक्षी न हाँ कह पाते न ना। घुमा-फिरा बार-बार वही उत्तर देते। नॉर्टन को यह समझाने की चेष्टा करते कि उनका कोई भी belief (विश्वास) नहीं, वे सन्देह में झूल रहे हैं। किन्तु नॉर्टन वह उत्तर नहीं चाहते थे, बार-बार मेघगर्जना करते हुए उसी सांघातिक प्रश्न से साक्षी के सिर पर वज्राघात करते, "come, sir, what is your belief ?" (हाँ, तो फिर क्या राय है महाशय, आपकी?) नॉर्टन के क्रुद्ध होते ही बर्ली भी ऊपर से गरजते, "टोमारा क्या विश्वास है?" बेचारे साक्षी महाविपद् में पड़ जाते। उनका कोई विश्वास नहीं, लेकिन एक तरफ़ से मजिस्ट्रेट, दूसरी तरफ़ से नॉर्टन क्षुधित व्याघ्र की तरह उनकी

बोटी-बोटी अलग कर अमूल्य अप्राप्य विश्वास बाहर निकलवाने को तत्पर हो दोनों तरफ़ से भीषण गर्जन कर रहे हैं। बहुधा विश्वास ज़ाहिर न होता, चकरायी बुद्धि और पसीने से तर साक्षी उस यन्त्रणा-स्थल से अपने प्राण बचा भाग खड़े होते। कोई-कोई प्राणों को ही विश्वास से प्रियतर मान नॉर्टन साहब के चरण-कमलों में झूठे विश्वास का उपहार चढ़ा बच निकलते, नॉर्टन भी अति सन्तुष्ट हो बाकी जिरह स्नेहसहित सम्पन्न करते। ऐसे परामर्शदाता के साथ आ मिले ऐसे मजिस्ट्रेट तभी तो मुक़द्दमे ने और भी अधिक नाटकीय रूप धारण कर लिया था।

"द्रोण ने क्या किया?"

कुछ एक साक्षियों के विरुद्धाचरण करने पर भी अधिकांश नॉर्टन साहब के प्रश्नों का अनुकूल उत्तर देते। इनमें जाने-पहचाने कम ही थे। कोई-कोई किन्तु परिचित भी था। देवदास करण महाशय ने हमारी विरक्ति दूर कर हमें खूब हँसाया था, चिरकाल हम उनके कृतज्ञता के ऋण में बँधे रहेंगे। इन साक्षी ने यह गवाही दी थी कि मेदिनीपुर के सम्मेलन के समय जब सुरेन्द्र बाबू ने अपने छात्रों से गुरुभक्ति के बारे में पूछा था तब अरविन्द बाबू बोल पड़े थे, "द्रोण ने क्या किया?" यह सुनते ही नॉर्टन साहब के आग्रह और कौतुहल की सीमा न रही, उन्होंने निस्सन्देह यह सोचा होगा कि द्रोण या तो कोई बम का भक्त है या राजनीतिक हत्यारा या मानिकतला बागान या छात्रमण्डली से संयुक्त। नॉर्टन के ख़याल में इस वाक्य का अर्थ शायद यह था कि अरविन्द घोष ने सुरेन्द्र बाबू को गुरुभक्ति के बदले बम का पुरस्कार देने का परामर्श दिया था, तब तो मुक़द्दमे में बड़ी सुविधा हो सकती है। अतएव उन्होंने साग्रह प्रश्न किया, "द्रोण ने क्या किया?" शुरू में साक्षी किसी भी तरह प्रश्न का उद्देश्य समझ न सके। पाँच मिनट तक इसे लेकर खींचतान चलती रही, अन्त में करण महाशय ने दोनों हाथ ऊपर फैला नॉर्टन साहब को जतलाया, "द्रोण ने अनेक चमत्कार दिखलाये थे।" इससे नॉर्टन साहब सन्तुष्ट नहीं हुए। द्रोण के बम का अनुसन्धान न मिलने तक सन्तुष्ट हों भी कैसे? दोबारा पूछा, "अनेक चमत्कार क्या बला हैं? क्या विशेष किया है उन्होंने?" साक्षी ने इसके अनेकों उत्तर दिये, एक से भी द्रोणाचार्य के जीवन के इस गुप्त रहस्य का भेद नहीं खुला। नॉर्टन साहब

भड़क उठे, गरजना शुरू किया। साक्षी भी चिल्लाने लगे। एक वकील ने हँसते हुए यह सन्देह व्यक्त किया कि शायद साक्षी को पता नहीं कि द्रोण ने क्या किया। करण महाशय इस पर क्रोध और क्षोभ से आगबबूला हो उठे। चिल्लाये, "क्या? मैं? मैं नहीं जानता कि द्रोण ने क्या किया? वाह, क्या मैंने वृथा ही सारा महाभारत पढ़ा?" आधे घण्टे तक द्रोणाचार्य की मृत-देह पर करण और नॉर्टन का महायुद्ध चला। हर पाँच मिनट बाद अलीपुर विचारालय को कँपाते नॉर्टन अपना प्रश्न गुँजाने लगे, "Out with it, Mr. Editor! what did Drona do?" (हाँ, बताइये-बताइये, सम्पादक महाशय, द्रोण ने क्या किया?) उत्तर में सम्पादक महाशय ने एक लम्बी रामकहानी आरम्भ की, किन्तु द्रोण ने क्या किया, इसका कोई विश्वसनीय संवाद नहीं मिला। सारी अदालत ठहाकों से गूँज उठी। अन्त में टिफ़िन के समय करण महाशय ज़रा ठण्डे दिमाग से सोच-समझ कर लौटे और समस्या की यह मीमांसा बतलायी कि बेचारे द्रोण ने कुछ नहीं किया, बेकार ही उनकी परलोकगत आत्मा को ले आधे घण्टे तक खींच-तान हुई, अर्जुन ने ही गुरु द्रोण का वध किया था। अर्जुन के इस मिथ्या अपवाद से द्रोणाचार्य ने निस्तार पा कैलाश पर सदाशिव को धन्यवाद दिया होगा कि करण महाशय की गवाही के कारण अलीपुर के बम-केस में उन्हें कठघरे में खड़ा नहीं होना पड़ा। सम्पादक महाशय की एक बात से सहज ही अरविन्द घोष के साथ उनका सम्बन्ध प्रमाणित हो जाता। किन्तु आशुतोष सदाशिव ने उनकी रक्षा की।

गवाहों की श्रेणियाँ

जो गवाही देने आये थे उन्हें तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। पुलिस और गोयन्दा, पुलिस के प्रेम में आबद्ध निम्नश्रेणी के लोग और सज्जन, और तीसरे अपने दोषवश पुलिस-प्रेम से वञ्चित, अनिच्छा से आये हुए गवाह। हर श्रेणी का गवाही देने का ढंग था अलग-अलग। पुलिस महोदय प्रफुल्ल भाव से, अम्लानवदन अपने पूर्वज्ञात वक्तव्यों को मनमाने ढंग से बोल जाते, जिसे पहचानना होता पहचान लेते—कोई सन्देह नहीं, दुविधा नहीं, भूल-चूक नहीं। पुलिस के संगी-साथी अतिशय आग्रह के साथ गवाही देते, जिसे पहचानना होता उसे भी पहचान लेते और जिसे

नहीं पहचानना होता उसे भी बहुत बार अतिशय उत्सुकतावश पहचान लेते। अनिच्छा से आये गवाह जो कुछ जानते होते वही कहते, लेकिन वह बहुत थोड़ा होता; नॉर्टन साहब उससे असन्तुष्ट हो और यह सोच कर कि साक्षी के पेट में अपार मूल्यवान् और सन्देहनाशक प्रमाण हैं, जिरह के बल पर उसका पेट चीर उन्हें बाहर निकालने की भरपूर चेष्टा करते। इससे साक्षी महाविपद् में पड़ जाते। एक ओर नॉर्टन साहब की गर्जना और बर्ली साहब की लाल-लाल आँखें, दूसरी ओर झूठी गवाही दे देशवासियों को कालेपानी भेजने का महापाप। गवाहों के सामने एक गुरुतर प्रश्न उठ खड़ा होता, नॉर्टन और बर्ली को ख़ुश करें या भगवान् को। एक तरफ़ क्षणस्थायी विपत्ति—मनुष्यों का कोप, दूसरी ओर पाप का दण्ड—नरक और परजन्म में दुःख। लेकिन वे सोचते, नरक और परजन्म तो दूर की बातें हैं, मनुष्यकृत विपद् तो उन्हें अगले क्षण ही ग्रस सकती है। बहुतों के मन में यह डर था कि मिथ्या साक्ष्य देने के लिए राज़ी न होने पर भी मिथ्या साक्ष्य के अपराध में पकड़े जायेंगे, क्योंकि ऐसे स्थलों पर परिणाम के दृष्टान्त विरल नहीं। अतएव इस श्रेणी के साक्षियों को जो समय साक्षी के कठघरे में अतिवाहित करना पड़ता वह उनके लिए विलक्षण भीति और यन्त्रणा का समय होता। जिरह शेष होने पर उनके अर्द्ध-निर्गत प्राण फिर से देह में लौट उन्हें यन्त्रणामुक्त करते। कुछ एक साहस के साथ गवाही देते, नॉर्टन की गर्जना की परवाह न करते, अंगरेज़ परामर्शदाता भी यह देख जातीय प्रथा का अनुसरण कर नरम पड़ जाते। इस तरह कितने ही साक्षी आये, कितनी तरह की गवाहियाँ दे गये, किन्तु एक ने भी पुलिस के लिए उल्लेखनीय कोई सुविधा नहीं की। एक ने साफ़ कहा—मैं कुछ नहीं जानता, समझ नहीं आता क्यों पुलिस मुझे ज़बरदस्ती खींच लायी है! इस तरह का मुक़द्दमा चलाना शायद भारत में ही सम्भव है, दूसरे देशों में जज इससे झुँझला उठते और पुलिस का गंजन कर अच्छा सबक सिखाते। बिना अनुसन्धान किये दोषी-निर्दोष का विचार न कर कठघरे में खड़ा करना, अन्दाज़ से सौ-सौ साक्षी खड़े कर देश का पैसा बहाना और आसामियों को निरर्थक लम्बे समय तक कारा-यन्त्रणा में रखना इस देश की पुलिस को ही शोभा देता है। लेकिन बेचारी पुलिस क्या करे? वह तो नाम की गोयन्दा थी, उसमें जब वह क्षमता ही नहीं थी तो ऐसे साक्षियों के लिए

एक विशाल जाल फेंक कर अन्दाज़ से उत्तम, मध्यम और अधम साक्षी फँसा कठघरे में खड़ा करना ही था एकमात्र उपाय। क्या मालूम शायद वे कुछ जानते हों, कुछ प्रमाण दे भी दें?

आसामियों की पहचान

आसामियों को पहचानने की व्यवस्था भी बड़ी रहस्यमय थी। पहले साक्षी से पूछा जाता, तुम इनमें से किसी को पहचान सकोगे? साक्षी यदि कहते, हाँ, पहचान सकता हूँ तो नॉर्टन साहब हर्षोत्फुल्ल हो तुरत कठघरे में Identification parade (पहचान-परेड) की व्यवस्था करा वहाँ उन्हें अपनी स्मरणशक्ति को चरितार्थ करने का आदेश देते। यदि वे कहते, पता नहीं, शायद पहचान भी लूँ, तो ज़रा नाराज़गी से कहते, अच्छा, जाओ, चेष्टा करो। यदि कोई कहता, नहीं, नहीं कर सकूँगा, मैंने उन्हें नहीं देखा या ध्यान नहीं दिया तो भी नॉर्टन साहब उन्हें न छोड़ते। शायद इतने चेहरे देख पूर्वजन्म की कोई स्मृति ही जाग्रत् हो जाये इसलिए उसे परीक्षा करने को भेज देते। साक्षी में वैसी योगशक्ति नहीं थी। शायद पूर्वजन्मवाद में आस्था भी नहीं, वे आसामियों की दीर्घ दो पंक्तियों के बीच सार्जेंटों के नेतृत्व में, शुरू से अन्त तक गम्भीर भाव से कूच करते हुए, हमारे चेहरों को बिना देखे ही सिर हिला कर कहते—नहीं, नहीं पहचानता। निराश-हृदय नॉर्टन इस मत्स्यशून्य जीवन्त जाल को समेट लेते। मनुष्य की स्मरणशक्ति कितनी प्रखर और अभ्रान्त हो सकती है इसका अपूर्व प्रमाण मिला इस मुक़द्दमे में। तीस-चालीस आदमी खड़े हैं, उनका नाम नहीं पता, किसी भी जन्म में एक बार भी उनके साथ बातचीत नहीं हुई, फिर भी दो मास पहले किसे देखा है, किसे नहीं देखा, अमुक को अमुक तीन जगह देखा, अमुक दो जगह नहीं; एक बार उसे दाँत माँजते हुए देखा था इसलिए उसका चेहरा जन्म-जन्मान्तर के लिए मेरे मन में अंकित रह गया है। इन्हें कब देखा, क्या कर रहे थे, कौन साथ थे, या एकाकी थे, कुछ भी याद नहीं, फिर भी उनका चेहरा मेरे मन में जन्म-जन्मान्तर के लिए अंकित है; हरि को दस बार देखा है इसलिए उन्हें भूलने की कोई सम्भावना नहीं, श्याम को एक बार सिर्फ़ आधे मिनट के लिए देखा लेकिन उसे भी मरते दम तक नहीं भूल सकूँगा, भूल-चूक होने की कोई सम्भावना नहीं,—ऐसी स्मरणशक्ति

इस अपूर्ण मानव-प्रकृति में, इस तमोभिभूत मर्त्य धाम में साधारणतः नहीं मिलती। एक नहीं, दो नहीं, प्रत्येक पुलिसपुंगव में ऐसी विचित्र, निर्भूल, अभ्रान्त स्मरणशक्ति देखने को मिली। इससे सी.आई.डी. पर हमारी श्रद्धा-भक्ति दिन-दिन प्रगाढ़ होने लगी। अफ़सोस है, सैशन्स कोर्ट में वह भक्ति कम करनी पड़ी थी। मजिस्ट्रेट को कोर्ट में दो-एक बार सन्देह न हुआ हो ऐसी बात नहीं। जब यह लिखित गवाही देखी कि शिशिर घोष अप्रैल में बम्बई में थे और ठीक उसी समय कुछ एक पुलिसपुंगवों ने उन्हें स्कॉट्स लेन और हैरिसन रोड पर भी देखा तब थोड़ा-सा सन्देह तो हुआ ही था। जब श्रीहट्टवासी वीरेन्द्रचन्द्र सेन स्थूल शरीर से बनियाचंग में पितृभवन में रहते हुए भी बागान में और स्कॉट्स लेन में—जिस स्कॉट्स लेन का पता वीरेन्द्र नहीं जानते थे, इसका अकाट्य प्रमाण लिखित साक्ष्य में मिला था—उनका सूक्ष्म शरीर सी.आई.डी. की सूक्ष्म दृष्टि ने देखा था, तब और भी सन्देह हुआ था। विशेषकर जिन्होंने स्कॉट्स लेन में कभी भी पदार्पण नहीं किया, उन्होंने जब सुना कि पुलिस ने उन्हें वहाँ कई बार देखा है, तब सन्देह का उद्रेक होना कुछ अस्वाभाविक नहीं। मेदिनीपुर के एक साक्षी —मेदिनीपुर के आसामियों से पता लगा कि वे भी गोयन्दा हैं—बोले कि उन्होंने श्रीहट्ट के हेमचन्द्र सेन को तमलूक में वक्तृता देते देखा था। किन्तु हेमचन्द्र ने अपनी स्थूल आँखों से कभी तमलूक नहीं देखा, तो भी उनके छायामय शरीर ने श्रीहट्ट से सुदूर तमलूक जाकर तेजस्वी और राजद्रोहपूर्ण स्वदेशी व्याख्यान दे गोयन्दा महाशय की चक्षुतृप्ति और कर्णतृप्ति की थी। किन्तु चन्दननगर के चारुचन्द्र राय के छायामय शरीर ने मानिकतला में उपस्थित हो इससे भी ज़्यादा रहस्यमय काण्ड मचाया था। पुलिस के दो कर्मचारियों ने शपथ खाकर कहा था कि उन्होंने अमुक दिन अमुक समय चारु बाबू को श्याम-बाज़ार में देखा था, वे श्याम-बाज़ार से एक षड्यन्त्रकारी के साथ मानिकतला बागान तक पैदल गये थे, उन्होंने भी वहाँ तक उनका पीछा किया था और बहुत पास से देखा था, अतः भूल होने की गुंजायश नहीं। वकील की जिरह से दोनों साक्षी टस से मस न हुए। **व्यासस्य वचनं सत्यम्**, पुलिस की गवाही भी अन्यथा नहीं हो सकती। दिन और समय के सम्बन्ध में भी उनकी भूल होने की कोई बात नहीं, क्योंकि ठीक उसी दिन, उसी समय चारु बाबू कॉलेज से छुट्टी ले कलकत्ते

में उपस्थित थे, चन्दननगर के डुप्ले कॉलेज के अध्यक्ष की गवाही से यह प्रमाणित हुआ था। किन्तु आश्चर्य! ठीक उसी दिन, उसी समय चारु बाबू हावड़ा स्टेशन के प्लैटफ़ॉर्म पर चन्दननगर के मेयर तार्दिवाल, तार्दिवाल की पत्नी, चन्दननगर के गवर्नर और अन्यान्य सम्भ्रान्त यूरोपीय सज्जनों के साथ बातें करते-करते टहल रहे थे। ये सब इसी बात को याद कर चारु बाबू के पक्ष में गवाही देने के लिए राज़ी हुए थे। फ़्रेंच गवर्नमेंट की चेष्टा से पुलिस द्वारा चारु बाबू को छोड़ दिये जाने पर विचारालय में इस रहस्य का उद्‌घाटन नहीं हुआ। किन्तु चारु बाबू को मैं यह परामर्श देता हूँ कि वे ये प्रमाण Psychical Research Society को भेज मनुष्यजाति के ज्ञान-सञ्चय में सहायता करें। पुलिस की गवाहियाँ मिथ्या नहीं हो सकतीं, —विशेषकर सी.आई.डी. की—अतएव थियोसोफ़ी के आश्रय के अलावा हमारे लिए और कोई चारा नहीं। सौ बात की एक बात, ब्रिटिश क़ानून-प्रणाली में कितनी आसानी से निर्दोषों को जेल, कालापानी और फाँसी तक हो सकती है इसका दृष्टान्त इस मुक़द्दमे में पग-पग पर पाया। कठघरे में खड़े न होने तक पाश्चात्य विचार-प्रणाली की मायावी असत्यता हृदयंगम नहीं की जा सकती।...

संगी युवक

... मेरे संगी युवकों ने भविष्य की या मुक़द्दमे के फल की ज़रा भी चिन्ता न कर कारावास के दिन बालकोचित आमोद में, हँसी में, खेल में, पढ़ने-सुनने में, समालोचना में बिताये। बहुत जल्दी ही उन्होंने जेल में कर्मचारी, सिपाही, क़ैदी यूरोपीय सार्जेंट, जासूस, कोर्ट के कर्मचारी—सभी के साथ मैत्री का नाता जोड़ लिया था एवं शत्रु-मित्र, बड़े-छोटे का विचार न कर सबके साथ बातचीत, हँसी-मज़ाक करने लग गये थे। कोर्ट का समय उन्हें बड़ा विरक्तिकर लगता, क्योंकि मुक़द्दमे के प्रहसन में रस बहुत कम आता था। यह समय काटने के लिए उनके पास न पढ़ने को किताब थी न बात करने की अनुमति। जो योग करना शुरू कर चुके थे, उन्होंने तब तक गुल-गपाड़े में ध्यान करना नहीं सीखा था, उनके लिए समय काटना पहाड़ हो जाता। शुरू में दो-चार जन पढ़ने के लिए किताब अन्दर लाने लगे, उनकी देखा-देखी बाक़ी सबने भी उसी उपाय का सहारा लिया।

उसके बाद एक अद्‌भुत दृश्य देखने को मिलता—मुक़द्दमा चल रहा है, तीस-चालीस आसामियों के समस्त भविष्य को ले खींचा-तानी चल रही है, उसका फल हो सकता है फाँसी के तख़्ते पर मृत्यु या आजीवन कालापानी, किन्तु उस ओर दृक्पात न कर उनमें से कोई बंकिम का उपन्यास, कोई विवेकानन्द का राजयोग या Science of Religions, कोई गीता, कोई पुराण तो कोई यूरोपीय दर्शन एकाग्र मन से पढ़ रहा होता। अंगरेज़ सार्जेंट या देशी सिपाही कोई भी उनके इस आचरण में बाधा नहीं देता। वे सोचते थे कि यदि इससे ही इतने सारे पिंजराबद्ध व्याघ्र शान्त रहें तो हमारा काम भी कम होता है और इससे किसी की क्षति भी नहीं होती। लेकिन एक दिन बर्ली साहब की दृष्टि खिंच गयी इस दृश्य की ओर, असह्य हो उठा मजिस्ट्रेट साहब को यह आचरण। दो दिन तो वे कुछ नहीं बोले, लेकिन और ज़्यादा न सह सके, पुस्तकें लाने की मनाही कर दी। असल में बर्ली इतना सुन्दर विचार कर रहे थे कि उसे सुन कर कहाँ तो सबको आनन्द लेना चाहिये था, उलटे पढ़ रहे थे सब पुस्तकें। यह तो बर्ली के गौरव और ब्रिटिश 'जस्टिस' की महिमा के प्रति घोर असम्मान प्रदर्शित करना है, इसमें सन्देह नहीं!

बॉक्स में जायेगा

क्या आप पाँच-छह सालों के लिए ऐकान्तिक और तीव्र ध्यान में नहीं चले गये थे?

मुझे इसके बारे में कोई ज्ञान नहीं कि मैंने ऐसा किया। लेकिन हाँ, शायद मेरी जीवनी लिखने वालों को मुझसे अधिक ज्ञान हो!

आध्यात्मिक पूर्णता में क्या विनोदप्रियता का कोई स्थान है?

अगर कोई सिद्ध कभी नहीं हँसता तो वह उसकी अपूर्णता है।

—श्रीअरविन्द

माधुर्य और मुस्कान

पेटदर्द का इलाज

मैं एक डॉक्टर से परिचित थी जो स्नायुओं का विशेषज्ञ था और पेट की बीमारियों का इलाज करता था। वह कहा करता था कि पेट की सभी बीमारियाँ हमेशा कम या अधिक बुरी स्नायविक अवस्था से आती हैं। वह अमीरों का डॉक्टर था और अमीर और बिना काम-धाम के लोग ही उसके पास जाया करते थे। वे उसके पास आकर कहते: "मेरे पेट में दर्द है, मैं हज़म नहीं कर पाता" आदि, आदि। उनके भयंकर दर्द होता था, उनके सिर में दर्द होता था। उनमें, हाँ, सब तरह की चीज़ें होती थीं! वह उनकी बातें बहुत गम्भीरता से सुनता था। मेरी एक परिचित महिला उसके पास गयी। डॉक्टर ने कहा: "हाँ, तुम्हारी हालत बहुत गम्भीर है। लेकिन तुम मकान की कौन-सी मंज़िल पर रहती हो? एकदम निचली मंज़िल पर? अच्छा ठीक है। अगर तुम पेट की व्यथा से मुक्त होना चाहो तो तुम्हें यह करना होगा। पूरी तरह पके हुए अंगूरों का एक गुच्छा ले लो (नाश्ता मत करना, नाश्ते से तुम्हारा पेट बिगड़ जाता है), अंगूरों का एक गुच्छा लो; उसे अपने हाथ में पकड़ो, इस तरह, बहुत सावधानी से। तब बाहर जाने की तैयारी करो—दरवाज़े से होकर नहीं, दरवाज़े से होकर कभी मत जाओ! तुम्हें खिड़की में से होकर जाना चाहिये। एक स्टूल उठा लो और खिड़की में से होकर बाहर निकलो। सड़क पर चली जाओ और हर दो क़दम पर एक अंगूर खाती जाओ—ज़्यादा नहीं, हाँ, ज़्यादा नहीं! तुम्हारे पेट में दर्द होगा! हर दो क़दम पर बस एक अंगूर। तुम्हें दो क़दम चलना चाहिये और फिर एक अंगूर खा लेना चाहिये, और बस इसी तरह करती जाओ जब तक कि अंगूर समाप्त न हो जायें। वापस न मुड़ो, जब तक अंगूर ख़तम न हो जायें आगे बढ़ती ही जाओ। तुम्हें एक बड़ा गुच्छा लेना चाहिये। और जब अंगूर ख़तम हो जायें तो तुम चुपचाप लौट सकती हो। लेकिन कोई गाड़ी न लो! पैदल ही वापिस आओ, वरना सारी तकलीफ़ फिर से लौट आयेगी। चुपके-से लौट आओ और मैं ज़िम्मा लेता हूँ कि अगर तुम हर रोज़ इस तरह करती रहोगी तो एकदम ठीक हो जाओगी।" और सचमुच महिला अच्छी हो गयी!...

लोगों को रोग-मुक्त करने का कोई और तरीक़ा नहीं है। व्यक्ति तभी रोग-मुक्त होता है जब वह असन्तुलन को देख सके और फिर से सन्तुलन स्थापित कर सके। हाँ, तुम्हें दो एकदम अलग तरह की श्रेणियों से काम पड़ता है...। कुछ लोग अपने असन्तुलन को पकड़े रहते हैं—वे उसे पकड़े रहते हैं, उसके साथ चिपके रहते हैं, उसे छोड़ना नहीं चाहते। तब तुम चाहे जितना कड़ा प्रयास कर लो, चाहे तुम सन्तुलन ला दो, फिर भी वे अगले ही क्षण असन्तुलित हो जायेंगे क्योंकि उन्हें उससे प्रेम है। वे कहते हैं : "नहीं, नहीं! मैं बीमार नहीं होना चाहता," लेकिन उनके अन्दर कोई चीज़ किसी असन्तुलन को मज़बूती से पकड़े रहती है, जो उसे नहीं छोड़ना चाहती। इसके विपरीत, दूसरी ओर ऐसे लोग होते हैं जो निष्कपट-भाव से सन्तुलन से प्यार करते हैं और जैसे ही तुम उन्हें सन्तुलन तक लौट आने की क्षमता दो कि सन्तुलन फिर से स्थापित हो जाता है और कुछ ही क्षणों में वे रोग-मुक्त हो जाते हैं। उनके अन्दर फिर से व्यवस्था लाने के लिए काफ़ी ज्ञान नहीं था, काफ़ी शक्ति नहीं थी—असन्तुलन एक अव्यवस्था ही तो है। लेकिन अगर तुम हस्तक्षेप करो, अगर तुम्हारे अन्दर ज्ञान है और तुम सन्तुलन को पुनः स्थापित कर दो तो स्वभावतः बीमारी ग़ायब हो जायेगी; और जो लोग तुम्हें यह करने देंगे वे रोग-मुक्त हो जायेंगे। केवल वही जो यह नहीं करने देते, वे रोग-मुक्त नहीं होते, और यह स्पष्ट है। वे तुम्हें क्रिया नहीं करने देते, वे बीमारी से चिपके रहते हैं। मैं उनसे कहती हूँ : "ओह! तुम रोग-मुक्त नहीं हुए? तब डॉक्टर के पास जाओ।" और सबसे अजीब बात यह है कि उन्हें डॉक्टरों पर विश्वास होता है, हालाँकि क्रिया वही रहती है!...

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. १३४-३५, १३३

पत्नी और प्रिय 'मॉडल'

मुझे एक बड़ी रोचक कहानी याद आती है जो मुझे रोदैं ने सुनायी थी। तुम रोदैं को जानते हो—उसे नहीं, उसके कार्य को? रोदैं ने एक दिन मुझसे एक प्रश्न किया; उसने पूछा : "दो स्त्रियों को परस्पर ईर्ष्या करने से कैसे रोक सकते हैं?" *(सब हँसते हैं)* मैंने उससे कहा : "ओह, यह सचमुच एक बड़ी भारी समस्या है! किन्तु तुम यह क्यों पूछ रहे हो?" तब उसने

मुझे बताया, "बात यह है : मैं जो भी मूर्तियाँ बनाता हूँ, प्रायः उन्हें पत्थर में गढ़ने या काँसे में ढालने से पहले मिट्टी से गढ़ता हूँ। और अधिकतर ऐसा होता है : कई बार मैं एक-दो दिन के लिए बाहर चला जाता हूँ। अपने मिट्टी के प्रतिरूपों को गीले कपड़े से ढक जाता हूँ ताकि मेरे पीछे वे सूख न जायें और उनमें दरारें न पड़ जायें, अन्यथा मेरी सारी मेहनत मिट्टी में मिल जायेगी और मुझे नये सिरे से उन पर काम करना पड़ेगा।" यह बात सभी मूर्तिकार जानते हैं। और उस बेचारे मूर्तिकार के साथ यह हुआ : घर में उसकी पत्नी थी, और एक स्त्री-मॉडल थी जिसे सामने बैठा कर वह मूर्तियाँ बनाता था, उसका उस घर में काफ़ी आना-जाना था, और वह बिना रोक-टोक के घर में आती रहती थी। अब, पत्नी तो पत्नी ठहरी। और जब रोदैं घर से बाहर जाता, वह बड़े सवेरे उसकी मूर्तियों के कमरे में आकर सब पर पानी छिड़क देती, सब कपड़ों पर, जिनके नीचे मूर्तियों के सिर या और अंग पड़े हुए होते थे। सब कुछ वहाँ ढका रहता था, गीले कपड़े में लिपटा रहता था। उस पर पानी ऐसे छिड़का जाता था जैसे कि पौधों पर। अतः वह आती और पानी छिड़क जाती थी। उधर, कुछ समय के बाद, दो-तीन घण्टे बाद, वह स्त्री-मॉडल भी आती, उसके पास उस कमरे की चाबी रहती थी। कमरे को खोल कर वह भी पानी छिड़क जाती। वह भली-भाँति देखती थी कि सब गीला है, किन्तु उसे भी अपने मूर्तिकार की मूर्तियों की देखभाल करने का अधिकार था—सो वह भी उस पर पानी छिड़क जाती। "और तब," रोदैं ने मुझे बताया, "परिणाम यह होता कि जब मैं बाहर से लौटता, तो मेरी सारी मूर्तियां बह रही होतीं और मैं जो भी काम करके जाता उसका निशान भी बाक़ी न होता!"

वह वृद्ध हो गया था, तब भी वह बूढ़ा ही था। बड़ा अद्‌भुत था वह। उसका सिर वन-देवता, यूनानी वन-देवता जैसा था। वह नाटा, भारी-भरकम आदमी था; बड़ी पैनी आँखें थीं उसकी। वह बड़ा व्यंग्यप्रिय था और कुछ... वह इस बात पर हँसा करता था, किन्तु फिर भी वह वापिस आकर अपनी मूर्तियों को साबुत ही देखना ज्यादा पसन्द करता!

और आपका उत्तर क्या था? (सब हँसते हैं।)

मुझे अब याद नहीं। *(सब हँसते हैं।)* शायद मैंने भी हँसी में कुछ उत्तर दे दिया था। हाँ, एक बात मुझे याद आती है, मैंने उससे पूछा : "तुम उन्हें यह बता कर क्यों नहीं जाते थे : अमुक स्त्री ही उस पर पानी छिड़केगी?" उसने तब अपने सिर के बचे-खुचे बालों को पकड़ कर खींचा और कहा : "तब तो छुरे चल जायेंगे।" *(सब हँसते हैं।)*

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ८२-८३

सुविधाजनक बहाना

ऐसे लोग हैं जो सद्भावना से भरे हुए आते हैं, इसके अतिरिक्त—मेरा ख़याल है, मैंने 'बुलेटिन' में कहीं लिखा है—उनकी सद्भावना इतनी उमड़ती हुई होती है कि उन्हें हर चीज़, भोजन भी, पूर्ण मालूम होता है। जब तक वे अपनी चैत्य चेतना में रहते हैं उन्हें हर चीज़ बहुत अच्छी लगती है। जब **वह** उतरने लगती है तो पुरानी आदतें उभरना शुरू करती हैं; समझ रहे हो न, जब चैत्य चेतना नीचे उतरती है तो पुरानी आदतें अपने स्थान पर वापिस चढ़ आती हैं। और तब वे कहना शुरू करती हैं : "अजीब बात है! मुझे यह चीज़ पसन्द थी, पर अब पसन्द नहीं है। यह खाना बेस्वाद हो गया है!" यह बीच का काल है, और फिर, कुछ समय बाद, अपने स्वभाव के अनुसार थोड़ा-बहुत लजाते हुए वे कहते हैं *(माताजी फुसफुसा कर कहती हैं)* : "क्या मैं अपना निजी भोजन नहीं पा सकता? क्योंकि... पता नहीं, मेरा पेट यह हज़म नहीं कर रहा!"...

तुम्हें चीज़ को बहुत स्पष्टता के साथ देखना चाहिये, समझे, क्योंकि कुछ ऐसे हैं जो कहने की हिम्मत नहीं करते, बहुत-से ऐसे हैं जिनमें कुछ कहने की हिम्मत नहीं होती, जब तक कि वे कुछ अस्वस्थ न हो जायें या सचमुच उनके पेट में दर्द न हो या वे यह न सोचें कि उनके पेट में दर्द है और डॉक्टर के पास न जायें। और डॉक्टर उनसे कहता है : "यह या वह लेकर देखो"—ठीक वैसी चीज़ें जिन्हें खाने के वे अभ्यस्त थे। डॉक्टर उनसे पूछना शुरू करता है : "तुम पहले क्या खाया करते थे?" *(हँसी)* "तुम यह खाने के अभ्यस्त थे न?" *(हँसी)* इस तरह। तब स्वभावतः वे तुरन्त कहते हैं : "हाँ, हाँ, हाँ, मैं सोचता हूँ कि इससे मुझे लाभ होगा!" *(हँसी)*

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. १८५-८६

शिष्य का सुझाव और गुरु का जवाब

हे गुरु, तो ऐसा ही हो। कई दिनों से मैं हवा में झूल रहा हूँ और अब मुझे किसी भी तरह और कहीं भी उतरना होगा—अगर आप अनुमति दें—अब मुझे लम्बे अरसे से चल रही मेरी अन्दरूनी बीमारी से छूटने का कोई प्रचण्ड नुस्ख़ा दीजिये।

अपनी तरफ़ से ये रहे मेरे सुझाव—
पहला—मैं चाय पीना एकदम छोड़ दूँगा : मुझे बहुत प्रिय है।
दूसरा—मैं 'चीज़' (cheese) नहीं खाऊँगा : मुझे पसन्द है।
तीसरा—मैं स्वादिष्ट खाना एकदम छोड़ दूँगा और बीच-बीच में उपवास करना शुरू कर दूँगा।
चौथा—तेल लगाना बन्द कर दूँगा और सिर पर उस्तरा फिरवा दूँगा।
पाँचवा—बस एक कम्बल बिछा कर सोऊँगा, तकिया नहीं।
छठा—मच्छरदानी के बिना सोऊँगा, लेकिन मुझे डर है कि यही सबसे ज़्यादा मुसीबत-भरा साहसिक कार्य होगा, क्योंकि मच्छरों की भनभनाहट मेरे लिए कभी लोरी का सुख नहीं बन पायी!

मेरा विश्वास कीजिये कि हालाँकि मैंने अपने ये दृढ़ संकल्प ऐसी भाषा में लिखे हैं जो असंसदीय जान पड़े, लेकिन यह सब लिख कर मेरा दिल सचमुच भारी हुआ जा रहा है, आँसुओं से भीग रहा है; चूँकि मुझे मुक्ति का कोई छोटा रास्ता नहीं दीख पड़ता इसलिए ये प्रण ले बैठा! अब आप और श्रीमाँ ही मेरे इन संकल्पों पर या हामी की मोहर लगाइये या फिर इनमें सुधार कीजिये, कृपया, करेंगे न?

तुम्हारे इन ब्योरेवार सुझावों को ताकता-ताकता तो मैं हक्का-बक्का रह गया! उपवास? मुझे उपवासों पर विश्वास नहीं, हालाँकि मैंने ख़ुद कई दिनों तक उपवास रखा है। उसके बाद तुम सचमुच राक्षस की तरह भकोसोगे।

सिर पर उस्तरा फिरवाना? क्या तुमने इसके परिणामों के बारे में सोचा है? मैं स्वयं २४ नवम्बर के दर्शन के समय तुम्हारा ऐसा रूप देख

कर उस सदमे से शायद कभी उबर ही न पाऊँ, और फिर चारों दिशाओं में तुम्हारे जो चर्चे चलेंगे! तुम नये तरीक़े से प्रसिद्ध बन जाओगे जिससे तुम्हारी सारी पिछली महिमाएँ अंधेरे के गर्त में डूब जायेंगी। और अब जब तुम प्रसिद्धि-कीर्ति और अहंकार की सभी चीज़ों से मुँह फेर लेना चाहते हो! **नहीं, नहीं** : बड़ा ख़तरनाक क़दम उठाना चाहते हो तुम!

मच्छरदानी के बिना सोना? इसका मतलब होगा, नींद न होना, जो फ़ाक़ा करने के जितना बुरा है। न सिर्फ़ तुम्हारी आँखें कमज़ोर हो जायेंगी बल्कि तुम ख़ुद भी कमज़ोर पड़ जाओगे—और फिर उदास, चिड़चिड़ा, मनहूस, कटखैया-सा बन जाना—नहीं, नहीं, फिर तुम एक ऐसे कुरूप, घृणास्पद अतिमानव की चर्चा करने बैठ जाओगे जिसकी कल्पना तुमने एक बार पहले भी की थी। नहीं, हरगिज़ नहीं, हम फिर से वैसा ख़तरा नहीं मोल ले सकते! रही बात बाक़ी चीज़ों की, मैंने सभी सुझाव माँ के सामने रख दिये और उन्होंने बिना किसी पक्षपात के एक बार उन पर नज़र डाल ली है... वह हम बाद में देखेंगे।

मैंने तपस्या के नियमों में देखा है कि जब तुम तपस्या से अंकुश हटा लेते हो तो पहले की तरह साधारण बन जाते हो, निस्सन्देह, कुछ अपवाद तो होते ही हैं—इससे पता चलता है कि रूपान्तर सच्चा नहीं था। कुछ लोग यह सूक्ष्म तरीक़ा अपनाते हैं कि कुछ समय के लिए किसी चीज़ को छोड़ देते हैं, फिर थोड़े दिनों के बाद उसे अपना लेते हैं, फिर छोड़ते हैं, फिर अपनाते हैं, इस तरह वे अपनी परीक्षा तब तक लेते रहते हैं जब तक कि ख़ुद को पूरी तरह आज़मा नहीं लेते; उदाहरण के लिए, तुम आलू खाना छोड़ दो, बस आश्रम का ही खाना खाओ, अगर आलू खाने की इच्छा जागे तो समझ लो कि तुम्हारा इलाज अभी तक नहीं हुआ; अगर इच्छा न भी जागे फिर भी तुम तब तक इस बात से निश्चिन्त नहीं हो सकते कि आलू के लोभ से तुम्हारा पिण्ड छूट गया है या नहीं जब तक कि दोबारा न खाओ। और तभी जब आलू खाना, न खाना तुम्हारे लिए बराबर हो जाये, तुम कुछ आशा रख सकते हो कि हाँ तुम इलाज के रास्ते पर चल पड़े हो।

बहरहाल, इन सब बातों से तुम सोचोगे कि तपस्वी-जीवन के पथ पर मैं गुरु के रूप में सम्भवतः योग्य नहीं हूँ, और शायद तुम्हारा मत ठीक

भी हो। देखो, मेरे अन्दर आन्तरिक कार्य करने का बड़ा भारी झुकाव है और मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि अगर तुम चैत्य को एक अवसर दो तो वह कठोरता और परेशानी के बिना तुम्हारे रास्ते की सभी बाधाओं और रगड़-झगड़ को उखाड़ बाहर कर देगा।...

लेकिन तुम्हारे अन्दर इस अजीबोग़रीब विचार ने भला क्यों डेरा डाल लिया कि हम तुम्हारे ऊपर तपस्या को थोप रहे हैं? कब? कैसे? कहाँ? वह तो बार-बार के तुम्हारे इस हठ को देख कर कि तुम्हारे अन्दर तपश्चर्या का उदात्त कार्य करने की बड़ी चाह है, मैंने यह स्वीकार किया कि तुममें यह सम्भावना है, और जब मैंने तुम्हारे हृदय की उत्कट इच्छा को खँगाल कर देखा तो मुझे वहाँ तुम्हारे, यानी तपस्वी दिलीप के विराट् अन्तर्दर्शन हुए!—वे अलौकिक भीषण नेत्र, धोती से आवेष्टित, बस मूँगफली और कीलों का भोजन लेने वाले और कीलों के बिस्तर पर शयन करने वाले उस महान् दिलीप के दर्शन किये मैंने जो शिवजी की उपस्थिति में भौचक्का बना बैठा था!! मैंने तो कभी तुम्हें तपस्वी का नुस्ख़ा नहीं दिया, वह तो तुम्हीं उसके लिए इतना शोर मचा रहे थे... तुम्हारे सुझावों के बारे में श्रीमाँ की टिप्पणी थी—'बकवास!'

वास्तव में तुमने जो सुझाव दिये हैं वे मेरे अन्तर्दर्शनों से भी ज़्यादा महान् हैं!—उस्तरा फिरा हुआ, धोती पहने, मच्छरों से पूरी तरह खाया हुआ दिलीप... और बाक़ी सब... हाँ, आसक्ति पर विजय पाना एकदम अलग बात है। बिना किसी उतार-चढ़ाव के तुम्हें अपनी चाय और आलू ग्रहण करने चाहियें—हों तो ठीक, न हों तो भला...

हमने तपस्या के बारे में जो कुछ तुमसे कहा था उसका तुम ग़लत अर्थ लगा बैठे, उसे तुमने एकदम से शुष्क-नीरस वस्तु बना डाला। चलो, अन्त भला तो सब भला... अब तुम समझ गये होगे कि मुँडा हुआ सिर तपस्वी का द्योतक बिलकुल नहीं है। तपस्या वस्तुतः सच्चा आन्तरिक आनन्द है, मात्र रूखा-सूखा कठोर जीवन नहीं...

—Sri Aurobindo's Humour, पृ. ३२५-२८

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

जुलाई

१. जब तक तुम्हारे अन्दर धैर्य और अटल अध्यवसाय न हों तब तक रूपान्तर के पथ पर न चलना ही ज़्यादा अच्छा है।

२. स्थिर-शान्त रहो और केवल काम के लिए ही नहीं, रूपान्तर सिद्ध करने के लिए भी बल और सामर्थ्य जुटाओ।

३. अगर तुम अपने अन्दर से उन चीज़ों का उन्मूलन कर दो जो संसार में भ्रान्तिपूर्ण हैं तो संसार भ्रान्तिपूर्ण न रहेगा।

४. सहायता करने का सबसे अच्छा तरीक़ा है—धरती पर जो परम चेतना उतरी है उसे अपने अन्दर रूपान्तर का कार्य करने देना।

५. अगर धरती पर दिव्य सृष्टि को चरितार्थ करना है तो देवताओं को भी परम प्रभु के प्रति समर्पण करना होगा।

६. हमेशा विरोधी शक्तियों के बारे में सोचते रहना और उनसे डरना बहुत भयानक दुर्बलता है।
ग़लत चीज़ों की कल्पना करना बन्द कर दो तो साथ ही तुम्हारे कष्ट समाप्त हो जायेंगे।

७. भागवत चेतना तुम्हारा रूपान्तर करने के लिए काम कर रही है, उसे अपने अन्दर खुल कर काम करने देने के लिए तुम्हें उसकी ओर खुलना चाहिये।

८. धरती पर इतना अधिक धुँधलापन गिरा है कि केवल अतिमानसिक अभिव्यक्ति ही उसे विलीन कर सकती है।

९. हर एक के लिए अपने चैत्य को ढूँढ़ना और उसके साथ निश्चित रूप से तादात्म्य पाना अनिवार्य है। अतिमानस अपने-आपको चैत्य द्वारा ही अभिव्यक्त करेगा।

१०. समस्त संकीर्णता, स्वार्थपरता, सीमाबन्धन को झाड़ फेंको और मानव एकता की चेतना के प्रति जागो। शान्ति और सामञ्जस्य पाने का यही एक रास्ता है।

११. तुम्हें हर समय समस्त सहायता मिलती रहती है, लेकिन तुम्हें उसे

अपने हृदय की नीरवता में ग्रहण करना सीखना चाहिये।

१२. तुम्हारे हृदय की नीरवता में ही भगवान् तुम्हारे साथ बोलेंगे, तुम्हें रास्ता दिखायेंगे और तुम्हारे उद्देश्य तक ले जायेंगे।

१३. बहुत सावधान रहो कि कोई भी प्रभाव मुझ पर तुम्हारे विश्वास को कम न कर पाये और किसी चीज़ या किसी व्यक्ति को अपने-आपको मुझसे अलग न करने दो।

१४. हमारे लिए यहाँ बस एक ही चीज़ की ग़िनती है, हम भगवान् के लिए अभीप्सा करें, भगवान् के लिए जियें और भगवान् के लिए ही कर्म करें।

१५. तुम जो कुछ करो भगवान् के लिए ही करो, सभी कार्य, सभी अभीप्साएँ, बिना अपवाद के सब कुछ भगवान् की ओर अभिमुख हो और हो सत्ता के समर्पण के साथ।

१६. किन्हीं भौतिक परिस्थितियों की अपेक्षा आदर्श के प्रति निष्ठा और कार्य के प्रति समर्पण मनुष्य को सच्चा शिष्य बनाता है।

१७. हमारे योग के अनिवार्य आधार हैं, सच्चाई, ईमानदारी, निस्स्वार्थ भाव, चरित्र की उदारता और निष्कपटता, जो कार्य हमें करना है उसके प्रति अनासक्त समर्पण।

१८. परिणाम पाने के लिए तुम्हें कड़ी मेहनत करनी पड़ती है और शान्त स्थिरता के साथ प्रयास करना होता है और कई बार परिणाम बाहरी दृष्टि से मुश्किल से दिखायी देते हैं।

मुसीबतों को जीतने के लिए उनसे भागना कोई हल नहीं है।

१९. महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हम जिस आदर्श को चरितार्थ करना चाहते हैं उसे कभी नज़र से ओझल न होने दें और इस आदर्श की दृष्टि से प्रत्येक परिस्थिति का लाभ उठायें।

योग के लिए पहली शर्त है निश्चल और स्थिर रहना।

२०. मैं हर एक से आशा करती हूँ कि वह अपनी अधिक-से-अधिक क्षमता के अनुसार अच्छे-से-अच्छा प्रयास करे।

२१. बेचैन न होओ, स्थिर रूप से अपने हृदय में एकाग्र रहो और तुम मुझे वहाँ पाओगे।

२२. मैं हमेशा तुम्हारे अन्दर उपस्थित होती हूँ, तुम्हारे निकट, और मेरे

आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ होते हैं।

२३. विश्वास रखो कि मैं हमेशा तुम्हें रास्ता दिखाने के लिए, तुम्हारे काम और तुम्हारी साधना में सहायता करने के लिए तुम्हारे साथ होती हूँ।

२४. आशीर्वाद किसी व्यक्ति या समूह के प्रति भागवत कृपा की अभिव्यक्ति होते हैं।

२५. अपने काम और अपनी प्रगति में तुम्हारी सहायता करने के लिए मेरी सहायता हमेशा तुम्हारे साथ रहती है।

आज तुम जिन कठिनाइयों को पार नहीं कर पाते उन्हें कल या बाद में पार कर लोगे।

२६. मैं हमेशा ऊपर की ओर देखती हूँ। वहाँ सुन्दरता, शान्ति, प्रकाश उपस्थित हैं। वे नीचे उतरने के लिए तैयार हैं। अतः हमेशा अभीप्सा करो और ऊपर देखो ताकि उन्हें पृथ्वी पर अभिव्यक्त कर सको।

२७. जगत् की कुरूप चीज़ों की ओर नीचे न देखो। जब कभी तुम्हें दुःख का अनुभव हो तो मेरे साथ ऊपर की ओर नज़र डालो।

२८. अगर तुम खुले रहो तो सहायता अवश्यमेव आयेगी।

२९. कृपा कर कि सब बादल छँट जायें, सभी आसक्तियाँ लुप्त हो जायें, सभी बाधाएँ अदृश्य हो जायें, ताकि तुम यहाँ, मेरे निकट, भगवान् के घर में रहने की शान्ति और आनन्द का पूरा रस ले सको।

३०. मैं सदा अपने प्रभु से प्रार्थना करती रहती हूँ कि वे तुम्हें तुम्हारे अन्दर अपनी उपस्थिति के बारे में सचेतन बना दें और इस प्रकार मेरे साथ एक बना दें।

३१. सबसे महत्त्वपूर्ण बात जो बच्चों को सिखानी चाहिये वह है, सच्चे और निष्कपट होने की परम आवश्यकता।

समस्त असत्य को, चाहे वह कितना भी हलका क्यों न हो, अस्वीकार करो।

उन्हें सदा प्रगति करते रहना भी सिखाना चाहिये, क्योंकि जैसे ही कोई प्रगति करना बन्द कर देता है वैसे ही वह पीछे गिरने लगता है, और यह क्षय का आरम्भ है।

हमेशा अपने आदर्श के प्रति निष्ठावान् और अपनी क्रिया में सच्चे और निष्कपट रहो।

श्रीमाँ के साथ पत्र-व्यवहार

(श्रीअरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-केन्द्र की एक विद्यार्थिनी के नाम पत्र जिसने माताजी को सोलह वर्ष की उम्र में पत्र लिखना शुरू किया था।)

मधुर माँ,

क्या हमारा प्राण केवल कामनाओं, स्वार्थपूर्ण भावनाओं आदि से ही बना है या उसमें कुछ अच्छी चीज़ें भी हैं?

ऊर्जा, बल, उत्साह, कलात्मक रुचि, साहस, शक्तिमत्ता आदि भी उसमें हैं —अगर हम उनका ठीक तरह से उपयोग करना जानें।

परिवर्तित और भागवत इच्छा को समर्पित प्राण, सभी विघ्न-बाधाओं पर विजय पाने वाला साहसी और शक्तिशाली यन्त्र बन जाता है। लेकिन पहले उसे अनुशासन में रखना होगा और इसके लिए वह तभी तैयार होता है जब भगवान् उसके स्वामी हों।

आशीर्वाद।

११ दिसम्बर १९६९

मधुर माँ,

जब श्रीअरविन्द चेतना के परिवर्तन की बात करते हैं तो उनका अर्थ क्या होता है?

सामान्य अज्ञानभरी मानव चेतना से निकल कर भागवत उपस्थिति के ज्ञान पर आधारित यौगिक चेतना में जाना।

१३ दिसम्बर १९६९

मधुर माँ,

जल्दी सोना और जल्दी उठना क्यों ज्यादा अच्छा है?

सूर्यास्त के समय एक तरह की शान्ति धरती पर उतरती है और यह शान्ति नींद में सहायक होती है।

सूर्योदय के समय एक सशक्त ऊर्जा धरती पर उतरती है और यह

ऊर्जा काम के लिए सहायक होती है।

अगर तुम देर से सोओ और देर से जागो तो तुम प्रकृति की शक्तियों का विरोध करते हो और यह बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण बात नहीं है।

२१ दिसम्बर १९६९

मधुर माँ,

क्या ज्योतिष तथा अन्य विद्याएँ हमेशा ठीक-ठीक भविष्यवाणियाँ करती हैं या मनुष्य अभी तक यह करने में असमर्थ है?

मनुष्य जो कुछ करता है उसके पीछे उसकी अक्षमता तो रहती ही है। केवल वही जो भगवान् के बारे में सचेतन हो चुका है और उनका कर्तव्यनिष्ठ यन्त्र बन चुका है, वही भूल-भ्रान्ति से बच सकता है, बशर्ते कि वह केवल भागवत आदेश के अनुसार ही काम करे और उसमें कोई व्यक्तिगत चीज़ न जोड़ दे।

यह कहना पड़ेगा कि यह आसान नहीं है। इसे ठीक तरह से वही कर सकता है जिसमें अहंकार बाक़ी न रहा हो।

२५ दिसम्बर १९६९

मधुर माँ,

ज्ञान और बुद्धि क्या हैं? क्या हमारे जीवन में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है?

ज्ञान और बुद्धि यथार्थ रूप में मनुष्य में उच्चतर मन की वे क्षमताएँ हैं जो उसे पशु से अलग करती हैं।

ज्ञान और बुद्धि के बिना आदमी आदमी नहीं, आदमी के शरीर में पशु होता है।

३० दिसम्बर १९६९

मधुर माँ,

क्या नयी जाति में हमारे शरीर का रूप बदल जायेगा?

अतिमानसिक सत्ता और मनुष्य के बीच अवश्य कोई ऐसा अन्तर होगा जिसकी तुलना मनुष्य और सबसे अधिक विकसित वानर के शरीर से की

जा सकती है। लेकिन यह अन्तर क्या होगा यह हम तब तक नहीं जान सकते जब तक यह नयी जाति पृथ्वी पर प्रकट न हो जाये।

१३ जनवरी १९७०

मधुर माँ,

खेल-कूद और शारीरिक प्रशिक्षण में क्या फ़र्क है?

खेल-कूद में सब तरह के खेल, प्रतियोगिताओं, साम्मुख्यों आदि की गिनती होती है जो प्रतियोगिता पर आधारित होते हैं, जिनमें स्थान और पुरस्कार आदि मिलते हैं।

शारीरिक प्रशिक्षण का अर्थ है मुख्य रूप से शरीर के विकास और संरक्षण के लिए सब प्रकार के व्यायाम।

स्वभावतः, यहाँ हमने दोनों को मिला दिया है परन्तु यह मुख्य रूप से इसलिए है क्योंकि मनुष्यों को, विशेष रूप से बाल्यावस्था में, प्रयास करने के लिए कुछ उत्तेजना की ज़रूरत होती है।

१४ जनवरी १९७०

मधुर माँ,

यहाँ अपने कप्तानों और अध्यापकों के लिए हमारा मनोभाव कैसा होना चाहिये?

आज्ञाकारी, इच्छुक और स्नेहमय मनोभाव। वे तुम्हारे बड़े भाई-बहन हैं जो तुम्हारी सहायता करने के लिए बहुत कष्ट उठाते हैं।

१ फ़रवरी १९७०

मधुर माँ,

स्रष्टा ने इस जगत् और मानवजाति की रचना क्यों की है? क्या वह हमसे कुछ आशा रखता है?

जगत् 'स्वयं वही' है। उसकी इच्छा है कि सब कुछ—हम सब, सारा जगत् और पूरा विश्व—फिर से वही होने के बारे में सचेतन हो जाये।

५ फ़रवरी १९७०

—'श्रीमातृवाणी' खण्ड १६, पृ. ४५२-५५

पतंग

"उधर... उधर..., अरे... नहीं बे, इस तरफ़... भागो भागो... आई... इ इ इ... आई"... मैंने सोचा, देखूँ क्या बात है जो ऐसी आवाज़ें आ रही हैं। दोपहर-भर किताब में मशगूल रहने के बाद मैं अलसाया-सा बैठा था। चप्पलें पैरों में फँसायी और बाहर पहुँचा। देखा, कोई पचास-साठ बच्चों का जमघट था। अलग-अलग क़द और उमर के बच्चों का झुण्ड था और अजीब-सी चिल्ल-पों हो रही थी। इस लम्बे-चौड़े जत्थे का शिकार बनी थी एक पतंग। झीने गुलाबी कागज़ की पतंग अपनी कटी डोर को लिये गरमी की शाम के ताँबे जैसे आकाश में गरम, धूल-भरी हवा में हलके गुलाबी-गुलाबी भँवर बनाती हुई नीचे बच्चों के सिर पर नाचती हुई धीरे-धीरे चली आ रही थी।

उस पतंग के घेरे में जितने घर थे, चाहे खपरैलवाले हों या लिपे-पुते साफ़ घर, उनमें शायद ही कोई बच्चा होगा। क्योंकि अब तक सब सड़क पर आ चुके थे। कुछ तो पहले से ही शिकार के इन्तज़ार में खड़े होंगे। (सौ में दस तो इस क़िस्म के अवश्य होते हैं जो ढलती गरमी की किसी भी शाम को सड़क पर खड़े शोर मचाते रहते हैं) बाक़ी यह सोच कर कि अवसर आने पर बाहर निकल आयेंगे घर में बैठे रहे होंगे। कोई बेचारा रोती खाते-खाते "हाँ... हूँ..." की आवाज़ें सुन कर, घबरा कर, झट से पानी के घूँट में रोटी गले के नीचे उतार कर, सुथना ऊपर खिसका कर, नाक पोंछता हुआ भाग आया होगा, तो कोई नहाते-नहाते, बाल्टी भर पानी गिरा कर, शायद बाल्टी की चोट भी खाकर सिर का गूमड़ मलते-मलते, नंग-धड़ंग, जत्थे में शामिल हो गया होगा।

जब मैंने इस मेलेनुमा जमघट को देखा तो शिकार को खसोटने की प्रतियोगिता शुरू हो चुकी थी, कभी दो-तीन की एकता से व कभी, जब किसी के हाथ में आने वाली होती, तो भीषण विद्रोह की अनेकता से। लाल, पीली और कई मिले-जुले रंगों की कमीज़ें, निकरें ही दूर से दिखायी पड़ती थीं। कई के रंग मैल की मोटी परत के नीचे ऐसे दब गये थे कि बिलकुल पास से भी पता न लगता था। किसी के भी पैरों में जूते नहीं थे। उनको पहनने का समय किसके पास था? सबकी साँसें धौंकनी की

तरह चल रही थीं... हैं... ऐं... हैं... ऐं... साथ में गुलाबी पतंग कभी हवा में झूलती हुई, कभी नीचे आकर एकदम से धोखा देकर ऊपर जाती हुई, कभी गोल-गोल चक्कर काटती हुई सिरों पर नाच रही थी। और उस एक के पीछे शतार्ध प्रत्याशियों के पैर भी नाच रहे थे।

पतंग के साथ चक्कर लगाते-लगाते नन्हें धड़ों पर टिकी पतली गर्दनें अवश्य थक गयी होंगी। मुझे अपने एक पुराने मास्टर याद आये जो नाराज़ होने पर यही सज़ा देते थे—यानी गर्दन आकाश की तरफ़ रख कर खड़े रहो। पर उस सज़ा में जैसी सख़्ती थी और जैसी अधीरता थी, यहाँ उसका लेशमात्र भी नहीं था। कोई बेचारा इस भूल में ज़मीन पर भी गिर पड़ता था पर क्षण-भर में, लक्ष्य को स्मरण कर, एकदम नयी स्फूर्ति-सहित खड़ा हो जाता।

और कोई दो-तीन मिनट। पतंग नीचे आने ही वाली थी। सड़क से दो-तीन गज़ ऊपर ख़ुद नाचती और दूसरों को नचाती हुई वह प्रत्याशियों के हाथों में पड़ने का इन्तज़ार कर रही थी। पचास-साठ बच्चों में कोई भी ऐसा न होगा जिसे पतंग मिलने से विजयश्री के साथ-साथ अर्थलाभ होने की आशा न हो। उन्होंने यह एक क्षण के लिए भी न सोचा था कि एक के हाथ आ जाने पर क्या बाक़ी उसे चुपचाप ले जाने देंगे? यह ज़रूरी था कि पतंग किसी के हाथ में आती और उससे बंधी थोड़ी-सी डोर किसी और के हाथ में। फिर छीना-झपटी की भी पूरी तैयारी थी। हाथ भी सौ-सवा सौ से कम न थे। पर ऐसी बातें कौन सोचता है? अगर कोई सोचता तो शायद पृथ्वी के इतिहास की कई रोमाञ्चक घटनाएँ न घट पातीं। बिलकुल सीधे-सादे ढंग से शासन चलते, राजा मरते, उनके पुत्र आते और कभी इस गाड़ी के रास्ते में कोई रुकावट न आती। और यहाँ भी एक ही लड़का सड़क पर, पतंग पर आँख लगाये खड़ा होता और हाथ में आने पर चुपचाप लेकर चल देता। पर वह लड़का कौन होता? यही तो सबसे बड़ा प्रश्न है। और इसी के लिए... पतंग अब चार-पाँच फुट से ऊपर न थी। अगर कोई लम्बा लड़का होता तो हाथ बढ़ा कर पकड़ लेता। मगर यहाँ तो सब बित्ते भर के थे। कूद अवश्य ऐसे रहे थे जैसे आकाश पकड़ लेंगे। "आयी ...लो अब आयी... पकड़ ले... सम्भल के ज़रा... हूँ... एँ... हूँ... हाँ, बस ब... स..." मैंने समझा नेपोलियन मॉस्को

पहुँच गया। पर नहीं। "देखते नहीं साइकिल आ रही है, बेवकूफ़..." कॉलेज का-सा लगने वाला एक लड़का साइकिल पर तेज़ी से आ रहा था। जमघट के बीच पहुँच कर उसने कर्र... र... र... से ब्रेक लगा कर साइकिल रोकी, हवा में हाथ मारा और फर्र... र... र... की आवाज़ करती हुई झिल्ली कागज़ की, दुअन्नी की गुलाबी पतंग उसकी मुट्ठी में आ गयी। साँसें अब भी धौंक रही थीं पर उस विशालकाय, पसीने से तर मुट्ठी में से जब गुलाबी कागज़ के चार टुकड़े हवा में झूलते हुए गिरे तो कोई पतली गर्दन उनकी तरफ़ न थी।

उस वीर के बाल पट्टीदार और मूँछें नयी-नयी थीं जिन पर ताव देता हुआ, एक हाथ काली पैंट की जेब में डाल कर, दाहिना पैडल दबा कर वह जमघट में से निकल गया।

'पुरोधा', जून २००४ से —कृष्ण कुमार

दो मनोरञ्जक कथाएँ

कहते हैं कि एक बार समृद्धि की देवी लक्ष्मी तथा दरिद्रता की देवी दरिद्री के बीच वाक्-युद्ध छिड़ गया। विवाद इस बात पर था कि कौन अधिक आकर्षक और ताक़तवर है? समृद्धि ने कहा—"अरे दरिद्री, यह भी कोई बहस का विषय है, कहाँ तुम और कहाँ मैं? मेरे वैभव को तो देखो..."

दरिद्री ज़रा भी न सिमटी, न सिकुड़ी। कहने लगी—"बहन, हो सकता है तुम्हारा वैभव अपरम्पार हो, तुम अधिक आकर्षक हो, लेकिन ताक़तवर मैं तुमसे कहीं ज़्यादा हूँ।"

समृद्धि की हँसी छूट गयी—"ताक़तवर, अरे संसार का ऐसा कौन-सा व्यक्ति है जो मुझे पाना नहीं चाहता? जो मुझे नहीं पूजता?"

"और संसार में ऐसी कौन-सी जगह है जहाँ मैं नहीं विराजती?" दरिद्री ने भी उतनी ही ज़ोर से अपना तर्क रखा।

समृद्धि ज़रा खिन्न-सी हो उठी—"तुम तो बहन, बेकार में मुझसे उलझ रही हो। सब जानते हैं कि मैं महान् हूँ। लोग मुझे पाने के लिए पूजा करते हैं, मैं प्रवेश कर जाऊँ तो घी के दीये जलाते हैं, तुम तो किसी को फूटी आँख भी नहीं सुहातीं।"

"लेकिन बहन, क्या तुमने यह कभी नहीं सोचा कि तुम्हें पाकर बहुत बार धरतीवासी उन्मत्त-से हो उठते हैं, और तब मैं तुम्हें खदेड़ कर अपना अखण्ड साम्राज्य स्थापित कर लेती हूँ। किसी से भी पूछ कर देख लो, तुमसे उन्नीस नहीं बीस ही ठहरूँगी।"

समृद्धि भड़क उठी—"बेबात की रार मचा दी है तूने। आकाश और पाताल, स्वर्ग या नरक क्या किसी से पूछने जाते हैं कि हममें से कौन बड़ा? कैसी हास्यास्पद बातें करती है तू।"

दरिद्री ने भी ठान ली थी कि आज अपनी ताक़त का अन्दाज़ा वह समृद्धि को दिलवा कर रहेगी। रास्ते चलते एक व्यक्ति को रोक कर बोली —"भाई, मैं हूँ दरिद्री और ये हैं समृद्धि। तुम बताओ, हममें से कौन बड़ा?"

अचानक आफ़त-सी टूट पड़ी उस पथिक पर। धर्म-संकट का मारा वह मन-ही-मन सोचने लगा—कैसी दुधारी तलवार पर खड़ा कर दिया है इसने मुझे। अगर समृद्धि को महान् कह दिया तो यह दरिद्री मुझे रास्ते का भिखारी बना कर छोड़ेगी और डर के मारे इस दरिद्री को बड़ा कह बैठा तो समृद्धि हमेशा के लिए मुझसे दामन छुड़ा बैठेगी। सभी देवों से प्रार्थना करते-करते अचानक उस पथिक पर किसी देव ने अपनी कृपा बरसा दी। एक विचार कौंध गया उसके मस्तिष्क में। हाथ जोड़ कर बोला—"देवियो, पास से तो आप दोनों ही अपनी-अपनी तरह से बहुत भव्य और बलशालिनी दीख रही हैं, लेकिन ज़रा मैं दूर से आप दोनों के आकर्षण को परखना चाहता हूँ। कृपया कुछ दूर जाकर मेरी तरफ़ वापिस आइये तो सम्भवतः मैं उचित उत्तर दे सकूँ।"

दोनों ख़ुशी-ख़ुशी कुछ क़दम जाकर लौट आयीं।

पथिक ने सविनय निवेदन किया—"आप दोनों ही मुझे समान रूप से भव्यता की प्रतिमूर्ति लगीं क्योंकि देवी समृद्धि, जब आप मेरी ओर आ रही थीं तो कितनी आकर्षक, मधुर और भव्य दीख रही थीं और देवी दरिद्री, आप जब मुझसे दूर जा रही थीं तो उतनी ही आकर्षक, मधुर और भव्य दीख रही थीं...।" दोनों ही ख़ुशी-ख़ुशी, गलबहियाँ किये चली गयीं।

दूसरी मनोरञ्जक कहानी—

एक शहरी किसी गाँव से जा रहा था, रास्ते में उसने एक कुम्हार को

देखा जो अपने बरतन सजाये वहीं बैठा ऊँघ रहा था। शहरी को यह बड़ा अजीब लगा कि एक दुकानदार दुकानदारी के समय ऊँघ रहा है, उसने अपना कर्तव्य समझ कर उसे उठाने का प्रयास किया, लेकिन वह तो आराम की नींद सो रहा था। "अरे कहीं उसके सारे बरतन लेकर कोई चम्पत ही न हो जाये" यह सोच कर उसने उसे झकझोर कर उठाया। नींद में ही कुम्हार बोला—"क्या चाहिये बाबूजी?"

"पहले उठो तो भाई" कह कर शहरी मन-ही-मन सोचने लगा, कैसा अजीब इन्सान है, दुकानदारी करने चला है या मक्खियाँ मारने।

मन मार कर कुम्हार को उठना ही पड़ा, ज़रा सम्भल कर बैठा फिर शहरी की ओर देख कर बोला—"जी फ़रमाइये, क्या चाहिये आपको?"

शहरी तो इस समय ख़रीददार नहीं उपदेशक था, उसे समझाते हुए बोला—"अरे भाई, तुम अपनी दुकान पर बैठे हो, यह दुकानदारी का समय है, तुम्हें ज़रा चुस्त होकर बैठना चाहिये, आते-जाते लोगों पर नज़र रखनी चाहिये।"

"फिर क्या होगा बाबूजी?" कुम्हार ने पूछा।

"यहाँ से गुज़रने वालों की निगाहें ताड़ो और उन्हें अपने पास बुलाओ।" शहरी ने समझाने के उसी लहजे में कहा।

"फिर क्या होगा बाबूजी?" कुम्हार ने पूछा।

शहरी को उस कुम्हार की बेवकूफ़ी पर क्रोध तो आया पर अपने ऊपर संयम रख कर बोला—"भाई, तुम भोले हो, जब तुम अपने बरतनों का बखान करोगे तो तुम्हारी बिक्री भी रातों-रात बढ़ जायेगी।"

"फिर क्या होगा बाबूजी?" कुम्हार के मुँह से वही भोलापन टपक रहा था।

शहरी को क्रोध आ ही गया। ज़रा तेज़ स्वर में बोला, "अजीब इन्सान हो तुम भी, अब भी पूछते हो कि "फिर क्या होगा?" अरे भाई, बिक्री बढ़ेगी तो आय भी तो बढ़ेगी।"

"लेकिन, फिर क्या होगा बाबूजी?" वही समान लहजा!!

यह तो सचमुच मूढ़मति है। शहरी अन्दर-ही-अन्दर बौख़ला उठा था, फिर भी अपने को संयम में रख कर बोला—"भले मानस, आय बढ़ेगी तो तुम ज़्यादा बरतन रख सकोगे, बरतन अधिक होने से ग्राहकों का तांता

लग जायेगा, तुम्हारी बिक्री दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ जायेगी और देखते-न-देखते तुम मालामाल हो जाओगे।"

"और फिर क्या होगा बाबूजी?" जब कुम्हार ने फिर वही प्रश्न दागा तो शहरी का पारा चढ़ ज़रूर गया लेकिन फिर अगले ही पल उसे उस ग़रीब इन्सान की बेवकूफ़ी पर मन-ही-मन हँसी आ गयी। धीरे से बोला—"भय्या, जब तुम्हारे पास ख़ूब रुपये-पैसे होंगे तो तुम बहुत सारे नौकर-चाकर रख सकोगे जो तुम्हारे आगे-पीछे घूमेंगे।"

जिस प्रश्न के उत्तर की वह प्रतीक्षा कर रहा था वही उसके कानों में गूँज उठा, "फिर क्या होगा बाबूजी?"

अपना अन्तिम पासा फेंकते हुए शहरी ने हथियार डालने के से लहजे में कहा, "अरे होगा क्या? फिर तुम ऐश की ज़िन्दगी बिताओगे। आराम करोगे।"

"फिर क्या होगा" सुनने की शक्ति उसके कानों में अब बची न थी अतः शहरी उस गँवार से अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए अपने रास्ते बढ़ने ही वाला था कि देहाती ने मुस्कुरा कर बड़ी शान्ति से कहा—"वाह, वाह, बहुत ठीक कहा आपने कि फिर मैं आराम करूँगा, लेकिन बाबूजी, ज़रा यह तो बताइये कि जब आपने मुझे जगाया था तो मैं क्या कर रहा था!!!?"

'पुरोधा', सितम्बर २००१ से —वन्दना

जागृति

(आज के सन्दर्भ की एक लघु कथा)

शाम का धुँधलका रात के सन्नाटे में बदल चुका था। गाँव की हर गली, हर चौराहे पर अँधेरा पसरा पड़ा था। जी हाँ, पाठको! यह दिल्ली या किसी राज्य की राजधानी की नहीं, बल्कि भारत के एक दूर देहात की लघु कथा है।

गाँव की चौपाल में जल रहे पेट्रोमैक्स की थोड़ी-सी रोशनी सामने की पगडण्डी पर भी पड़ रही थी! अरे! आप तो पेट्रोमैक्स के नाम से ही चौंक गये। जी हाँ जनाब! वही गैस का हंडा जो आजकल हम शहरी लोग ब्याह-बारात में ही देखते हैं और जो अब मिट्टी के तेल से नहीं,

जनरेटर की बिजली से चलता है। गाँव में मिट्टी के तेल से जलने वाले गैस के एक-दो हंडे भी तभी पहुँचते हैं जब कि रात को वहाँ कोई बहुत बड़ा आयोजन होना हो।

इसे गाँव का बहुत बड़ा सौभाग्य ही कहिये कि इस इलाक़े के विधायक, जो कि राज्य के बिजली मन्त्री भी हैं, आज रात चौपाल में तशरीफ़ ला रहे थे। तशरीफ़ लानी ही पड़ रही थी क्योंकि चुनाव-प्रचार पूरे ज़ोरों पर था और काँटे की टक्कर होने के कारण एक-एक वोट से हार-जीत की सम्भावना ने सभी उम्मीदवारों की धुकधुकी बढ़ा दी थी।

चौपाल में भीड़ जुटाने के एक घण्टे बाद झण्डा और लाल बत्ती लगी मन्त्रीजी की कार तीन अन्य कार-जीपों के काफ़िले के साथ वहाँ पहुँची। भीड़ के स्वागत के लिए नीचे आने से पहले ही पूरा दल-बल ऊपर आकर वहाँ बिछी ख़ाली चारपाइयों में धँस गया। गणमान्य व्यक्तियों द्वारा हार-फूलों से लाद दिये जाने के बाद अब मन्त्रीजी अपनी लच्छेदार बातें भीड़ के सामने परोस रहे थे कि तभी बूढ़े दीनू काका उठ कर खड़े हो गये।

'का हो काका, कुछ कहना है का?' मन्त्रीजी के मुख से शहद टपका।

'हाँ रे! तनिक देखियो तो रमुआ, मन्त्रीजी अपनी कार में बिजली भर के लाये हैं का?' दीनू काका के कहने के साथ ही चौपाल में हँसी का एक ठहाका गूँज उठा।

'का कहत हो काका! बिजली का कार में भर के आत है?' ठहाके के उतार के साथ ही रमुआ ने कहा।

'आत है रे रमुआ! मन्त्रीजी पिछली बार कहि के जात रहिन के अगली बार आवत रहिन तो बिजली लेकर आवत रहिन। अब मन्त्रीजी कार में आत रहिन तो बिजली का पैदल आत रहिन? ढूँढ़त रहो, बिजली उस कार मा ही होत रहिन।'

दीनू काका के कहने के साथ ही भीड़ ने चौपाल से नीचे उतर कर मन्त्रीजी की कार को चारों तरफ़ से घेर लिया।

मन्त्रीजी अब अपने दल-बल सहित वहाँ से खिसकने की जुगत लगा रहे थे।

—'वीणा' से साभार

A rich and diverse community of

Artists, Designers & Master - Builders,
Psychologists, Musicians & Scholars,
Doctors, Engineers & Seekers,

all united by a common aim - Sri Aurobindo's Integral Yoga

Auroma French Villaments

Aspired Living through Inspired Spaces

* Villa - apartments based on qualities in The Mother's Symbol
* Located 12 minutes from the Ashram and 15 minutes from Matrimandir
* Designed in French Heritage style with Gardens & Community Spaces
* Eco- friendly living with Active Residents' Association
* 24 Villaments - 21 sold & occupied

LAST APARTMENT REMAINING – 3 BHK ON 1ST FLOOR OF VILLA RECEPTIVITY. LIFT AVAILBLE.

For More Information / Bookings, Contact :
Mr. Prabodh Doshi ; 994 338 2983 ; prabodh@theauromagroup.com [or]
Ms. Trupti Doshi ; 994 495 2372 ; trupti@theauromagroup.com
www.theauromagroup.com

उनकी कृपा का स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है, आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट अवश्यंभावी और अनिवार्य है ।

— श्रीअरविन्द

अमरनाथ शिक्षण संस्थान, मथुरा (उ.प्र.)

फोन– 0565–3240006, 9358340375

Website : anvaschool.org, Email-amarnath.mtr1@rediffmail.com

Date of Publication: **1st July 2017**
Rs. 15.00 (Monthly) Registered: SSP/PY/47/2015-2017
RNI No.18135/70 WPP No.TN/PMG/(CCR)/WPP-472/15-17

A school by **The Vatika Group** vatika

Nature Friendly

"My child is in Grade 2. My son's journey with this school started 3 years back.

What really drew me to the school at the first instance is the calmness that prevails in the atmosphere!

Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy – class rooms in MatriKiran are the most nature friendly, spacious, well ventilated, they open out to green spaces... perfect to stay in communion with nature."

Dr. Nidhi Gogia
Mother of Soham Sharma, Grade 2

ADMISSIONS OPEN
Academic Year 2017-18

ICSE Curriculum

MatriKiran
www.matrikiran.in

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 to Grade 9

Junior School
W Block, Sec 49, Sohna Rd, Gugaon
+91 124 4938200, +91 9650690222

Senior School
Sec 83, Vatika India Next, Gugaon
+91 124 4681600, +91 9821786363